अब यहाँ यह देखिये कि सारे पृथ्वी के देश भारत की रूई को कितनी कितनी ख़रीदता है—

नाम देश	सन् १९११-१२	१९१३-१४	१९१६-१७	१९१७-१८
जापान	९४७६	१२९३४	१७३२२	२०५१२
जर्मनी	२२२४	४००२		
इटली	१८७०	२१२१	२४९०	२२६८
बेलज़ियम	२००६	२८२१		
आस्ट्रिया हंगरी	१३०७	१९४९		
युनाइटेड किंगडम	१२०६	९५७	१७९२	३९६६
फ्रांस	८१२	१३५९	६४८	६२१
स्पेन	३७६	४४९	७००	५३
हांगकांग	१२३	२६५	१४६	११९
चीन	११९	२२६	७२३	३३०
अन्य देश	१५५	२८९	२४७	५६९
कुल जोड़	१९६८४	२७३६२	२४०६८	२८४३८

* वन्देमातरम् *

हिन्दी साहित्य मन्दिर ग्रन्थमाला का १९वाँ ग्रन्थ

खादी का इतिहास।

लेखक

विद्यावाचस्पति

गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"
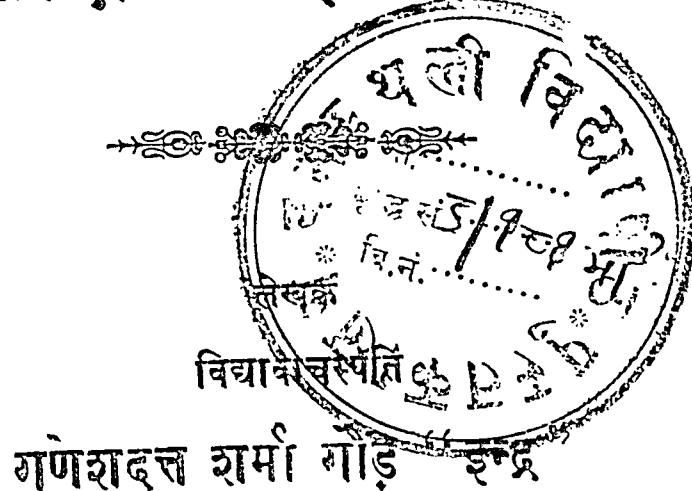
प्रकाशक

जीतमल लूणिया

हिन्दी साहित्य मन्दिर, बनारस सिटी।

प्रथमावृत्ति] जनवरी १९२३ ई० [मूल्य ॥=)

जो हाल कपड़े के लिए सूत निकालनेवाले मनुष्यों का हुआ, वही हाल धुनने बुनने तथा कपड़ा सम्बन्धी अन्य कार्य करनेवालों का हुआ। सारांश यह कि भारत में एकदम करोड़ों आदमी रोज़गार रहित हो टुकड़े के मोहताज़ हो गये। बेचारों को पैतृक धन्धा छोड़कर दूसरा काम करने के लिए तय्यार होना पड़ा। ऐसे पुरुषों की दृष्टि खेती की तरफ गई और थोड़े बहुत लोग खेती से अपनी जठराग्नि शान्त करने लगे। बाकी—बेरोजगार होने के कारण देश में चोर, व्यभिचारी, ठग, जुआरी, और नशेबाज बढ़ गये। वस्त्र व्यापार के साथ अपना गुज़र चलानेवाले और भी हजारों आदमी निकम्मे हो गये। उनकी आमदनी घट गई। एक बात और हुई कि देश में मज-दूरी कम हो गई, क्योंकि करोड़ों मनुष्य बे रोजगार हो गये—इसलिए मजदूर सस्ते मिलने लगे। देश की घोर दुर्दशा का यह समय इतिहास में जैसा रोमांचकारी है वैसा और कोई नहीं है।

अब भारत के सूती कपड़ों के व्यापार का पुनर्जन्म नये रंग रूप से हुआ। यह सन् १८५३ ई० की बात है। इस साल भारत के बम्बई नगर में विलायती ढंग पर वस्त्र बुनने के लिए एक कारखाना खुला। इसके यन्त्र भाफ या बिजली के द्वारा चलते हैं और रुई निकालने से लगा कर कपड़े की तह करने तक का काम करते हैं। मिलें धीरे धीरे बढ़ने लगीं क्योंकि यहाँ मिलों में काम करने के लिए मजदूर सस्ते मिलने लगे। सन् १९१५-१६ में भारतीय सब मिलों में लगभग २१ करोड़ की नकद पूँजी लगी हुई थी। उनमें एक लाख से अधिक करघे काम कर रहे थे और लगभग ६७ लाख तकुओं से सूत कतता था और तीन लाख काम करने वाले इसमें लगे हुए थे। इन मिलों में बहत्तर करोड़ पाउण्ड वजन का सूत काता गया था और लगभग ३५

प्रकाशक—

जीतमल लूणिया, सञ्चालक

हिन्दी साहित्य मन्दिर

बनारस सिटी।

मुद्रक—

गणपति कृष्ण गुर्जर

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबड़,

काशी। ७२७-२२

इतने पर भी यदि स्वदेशीवस्त्र विदेशी वस्त्र से सस्ता पड़ता तो भी ग़नीमत होती लेकिन अभी तक लोगों की यही शिकायत है कि स्वदेशी मिलों का कपड़ा विदेशी वस्त्रों के मुकाबिले महँगा ही पड़ता है ?

चरख़ों और करघों का ढंग प्राचीन भारत में इतना अच्छा था कि कुछ झगड़ा ही नहीं था। क्योंकि देश की सम्पत्ति एक से हट कर दूसरे के पास चली जाती थी और कोट के जेबों की तरह "एक दूसरे जेब में वस्तु जाकर उसी कोट में उसी मनुष्य के पास रहती है।" भारत के पास ही रहने लगी। जब एक जेब से निकाल कर कोई वस्तु किसी दूसरे के जेब में डाल दी जाती है तब वह पराई हो जाती है और उस पर उसका कोई अधिकार नहीं रह जाता। यही हालत देशी और विदेशी व्यापार की है। कपास पैदा करनेवाले से लगाकर रुई धुननेवाले पिंजारे, कातनेवाले, बुननेवाले और उसका व्यापार करनेवाले सभी भारतीय थे अतएव देश की सम्पत्ति उन्हीं के पास देश में ही रहती थी। किन्तु अंगरेज़ी शासन में इसमें बड़ी ही विश्रृंखलता पैदा हो गई। कपास भारत में पैदा हो, मिलों में उसकी रूई निकले और कपड़ा विलायत में बने और वहाँ से फिर भारत में आकर बिके। फल यह हुआ कि रूई के पैदा करनेवालों को उतना लाभ नहीं होता जितना कि उसके वस्त्र बना कर बेचनेवाले विदेशी व्यापारियों को। इस तरह भारत रूई के व्यापार को अपने हाथ से खो बैठा और उससे सारा लाभ विदेशी लोग उठाने लगे।

यदि भारत आज इतना निर्धन है तो इसका मुख्य कारण वस्त्र के व्यापार में गड़बड़ी है। यदि भारत आज इस पृथ्वी के देशों से नीचा है तो इसका कारण खादी का अभाव है और

समर्पण ।

वैश्यकुल भूषण

श्रीमान् सेठ जमनालाल जी बजाज

वर्धा ।

आपके विद्याप्रेम अपूर्व स्वार्थत्याग, खादीप्रेम आदि गुणों से मुग्ध होकर यह "खादी का इतिहास" कर कमलों में अत्यन्त श्रद्धा और प्रेमपूर्वक

सादर समर्पित

करता हूँ

आपका

गणेशदत्त शर्म्मा गौड़, "इन्द्र"

(कृष्णाष्टमी १९७९ वि)

इस बात को सबसे पहिले भारतवासियों को सिखानेवाला एक धार्मिक नेता था—उसका नाम था श्री० स्वामी दयानन्द सरस्वती। इस योगी ने आर्य जाति को सोते से जगाया और सत्य मार्ग बतलाया; इस बात को आज महात्मा गान्धी जी भी मानते हैं। इनके बाद प्रातःस्मरणीय महाराष्ट्र केसरी स्वर्गीय लोकमान्य वाल गंगाधर तिलक महोदय का नम्बर है। वैसे तो भारत पितामह नवरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविंद रानाडे, आदि महापुरुषों का नाम भी यहाँ उल्लेख्य हैं किन्तु जिन्होंने देश के लिए अपनी विशेष सेवाएँ अपर्ण कीं उन्हीं के नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं।

वैसे तो स्वदेशी की चर्चा बहुत दिनों से चल रही थी किन्तु उसे कार्य रूप में परिणत करनेवाले एकमात्र लोकमान्य तिलक ही थे। इन्हें देशभक्ति और स्वदेशी का महत्व देशवासियों को समझाने के अपराध में छः साल की कालेपानी की सज़ा हुई थी। देश सेवा के लिए इतने वर्षों के लिए देश-निकाले का दण्ड पानेवाला एकमात्र यही वीर था। अन्त में बृटिश सरकार ने उन्हें छः साल में ही कालेपानी से छोड़ दिया। इन दिनों स्वदेशी की चर्चा घर घर हो रही थी। समझदार देशवासियों तथा वंग देशीय भाइयों ने उनका साथ दिया। अब वह ज़माना नहीं था जिस ज़माने में तिलक के साथ जुल्म किया गया था। लोग कुछ कुछ सँभल चले थे और अपने स्वत्वों को भी पहिचानने लगे थे। स्वदेशी वस्त्र पहिनने की प्रतिज्ञा वाले हज़ारों ही मनुष्य थे किन्तु उस समय "अंग्रेज़ी स्वदेशी" मिलों का बना हुआ वस्त्र शुद्ध स्वदेशी माना जाता था और स्वदेशाभिमानी सज्जन उसे बड़े गर्व के साथ पहिनते थे।

इधर विश्वव्यापी योरोपीय महासमर का आरम्भ हुआ।

आठवाँ अध्याय ।

खादी आन्दोलन और सरकारी दमन ।

खादी का देश में पुनरुत्थान होता देख कर भारत-वासी अपना भी पुनरुत्थान देखने लगे किन्तु अंगरेज़ सरकार का दिल दहल गया। वह इसके रोक के उपाय सोचने लगी। पहिले तो कुछ दिनों तक सरकार चुपचाप रही किन्तु जब देखा कि विलायती गोरे भाइयों के भूखों मरने का समय जल्दी ही आनेवाला है तब कुछ न कुछ उपाय सोचना ही पड़ा। खादी का प्रयोग करने-वालों को राजद्रोही ठहरा कर उन्हें दबाने का प्रयत्न आरम्भ किया। परन्तु दबता अपराधी ही है क्योंकि उसकी अन्तरात्मा भी उसे दबाती है जो कि उसके शरीर की सच्ची सरकार है। जो निरपराधी होते हैं वे दबाने से उलटे उत्तेजित होते हैं क्योंकि वे निरपराध हैं—दबने की आवश्यकता ही क्या ?

सरकार ने दमनास्त्र प्रयोग किया। उसकी शिकार कई हज़ार मनुष्य हुए। यहाँ तक कि कुछ ही महीनों में हमारे निरपराध खादी प्रेमी भाई लगभग २५००० के जेलों में ठेल दिये गए। हमारे भारतीय भाइयों ने इस पर कुछ भी अस-न्तोष नहीं प्रकट किया बल्कि बड़े चाव से आनन्द के साथ

पहिले इसे अन्त तक ज़रूर पढ़ लीजिये।

राष्ट्रीय साहित्य ही देश में नया जीवन पैदा करता है। खेद है हिन्दी में इस समय इसकी बड़ी कमी है। इसी कमी की पूर्ति के लिये हमने **हिंदी सा० मंदिर ग्रंथमाला** नामकी माला निकालना शुरू किया है। अब देशवासियों से यह प्रार्थना है कि वे इस कार्य्य में हमारा उत्साह बढ़ावें और 'एक एक बूंद से घड़ा भर जाता है' उसी प्रकार कम से कम इस माला के स्थाई ग्राहक होकर और अपने मित्रों को बनाकर हमारी सहायता करें। स्थाई ग्राहक होने के लिये केवल एक दफ़ा आपको आठ आने देने पड़ेंगे।

स्थाई ग्राहक होने से अपूर्व लाभ।

(१) ग्रन्थमाला से प्रकाशित सब ग्रन्थ पौनी कीमत में मिलेंगे। (२) प्रकाशित या प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों में से आप **जो चाहें लें, न पसन्द हो, न लें कोई बन्धन नहीं।** (३) हमारे यहां दूसरे स्थानों की हिन्दी की प्रायः सभी उत्तम पुस्तकें मिलती हैं। इनमें से आप जो पुस्तकें हमारे यहां से मंगावेंगे, प्रायः उन सब पर एक आना रुपया कमीशन दिया जावेगा। (४) हमारे यहां जो पुस्तकें नई आवेंगी उनकी सूचना बिना पोस्टेज लिये ही घर बैठ आपको देते रहेंगे।

क्या अब भी आप स्थाई ग्राहक न होंगे।

अब हमें पूर्ण आशा है कि आप शीघ्र ही स्थाई ग्राहक हो जावेंगे—माला में यह पुस्तकें निकली हैं। (१) दिव्य जीवन ॥।) (२) शिवाजी की योग्यता ।॥) (३) सर जगदीशचन्द्र बोस ।≈) (४) प्रे० विलसन और संसार की स्वाधीनता ॥) (५) चित्राङ्गदा (ले० कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ) ।-) (६) नागपूर की कांग्रेस ॥-)

(७) तिलक-दर्शन—(लो० तिलक के भिन्न भिन्न अवस्था के १० सुन्दर चित्रों से सुसज्जित) बढ़िया कागज पर छपी हुई मूल्य २) इसमें लो० तिलक का स्फूर्तिकर चरित्र दिव्य राष्ट्रीय उपदेशों का अनूठा संग्रह, चुने हुए महत्वपूर्ण व्याख्यानों और लेखोंका अपूर्व संग्रह है। इसकी भूमिका श्रीमान् **पंडित मदन मोहन मालवीय जीने** छै पृष्ठों में लिखी है। भूमिका में वे लिखते हैं "मैंने इस चरित्र को आदि से अन्त तक पढ़ा है। इसके उत्साही और योग्य लेखक ने हमारे चिरस्मरणीय मित्र (लो० तिलक) के पवित्र और उपदेशमय जीवन का संक्षेप में ऐसा अच्छा चित्र खींचा है कि मुझको इसमें भूमिका की गोट लगाना अनावश्यक प्रतीत होता है। मुझे निश्चय है कि सहस्रों नर और नारी इस चरित्र को और लोकमान्य के चुने हुए इन लेखों और व्याख्यानों को उचित आदर के साथ पढ़ेंगे और उससे लाभ उठावेंगे।" दूसरी वार छपा है।

चुके हैं। परन्तु लोगों में धीरे धीरे आत्मबल बढ़ रहा है और वे ऐसी अन्यायपूर्ण आज्ञाओं को मानने के लिए तैय्यार नहीं हैं। जिसकी जैसी इच्छा हो वैसा खावे और जिसकी जैसी इच्छा हो वैसा पहिने इसमें सरकार को हाथ डालना नहीं चाहिए। एक ज़माना था जिसमें लोग सरकारी हुक्म को न्याय अन्याय का कुछ भी ध्यान न रख कर मानना ही अपना कर्तव्य समझते थे परन्तु अब लोग समझने लगे हैं, अपने अधिकारों को पहिचानने लगे हैं अतएव इस नवीन युग में "हम करें सो न्याय" नहीं हो सकता। थोड़ी देर के लिए सम्भवतः हो भी जावे किन्तु एक दिन ऐसे शासक को अपनी भूल मानना पड़ेगी तथा उस पर पश्चात्ताप प्रकट करना होगा। क्योंकि अपनी निरपराध शासित प्रजा पर जुल्म करनेवाला कदापि सुख और शान्ति नहीं पा सकता। किसी कवि ने कहा है—

"नीर नदियों को सुखा कर डूबता है आप भी।
क्या कभी निष्फल हुआ है निर्बलों का शाप भी?"

खादी के प्रचारकों ने, प्रेमियों ने, स्वदेश भक्तों ने, धर्म वीरों ने, सरकार के जेलखानों को ठसाठस भर दिया। इतने पर भी जो कुछ सरकार ने सोचा था वह नहीं हुआ। आन्दोलन बढ़ता ही गया। सराकर ने महात्मा गान्धी को इस आन्दोलन की जड़ समझ कर उन पर अपना वार किया। अन्त में ता० १० मार्च १९२२ को महात्माजी के लिए कृष्ण भूमि का निमन्त्रण आया। आठ दिन तक मुकद्दमे गवाही, पेशी इज़हार, आदि का नाटक खेल कर ता० १८ मार्च १९२२ को उन्हें छः वर्ष का कारावास दण्ड दे दिया गया। वह साधु हँसता हुआ और परमात्मा को धन्यवाद देता हुआ जेलखाने चला गया। गिरफ़ार होना, जेल जाना, दण्ड पाना कोई नई बात नहीं है।

(८) **असहयोग-दर्शन**—अर्थात् जीवन में नई जागृति पैदा करने वाले म० गान्धी के मुक्ति मन्त्रों का, उनके चुने हुए और असहयोग के मर्म बताने वाले लेखों और व्याख्यानों का अपूर्व संग्रह। इसका भूमिका श्रीमान् **पं० मोतीलालजी नेहरू** ने लिखी है। इसीसे आप समझ सकते हैं कि यह कितना अपूर्व ग्रन्थ है। छै मास में ही दो हजार कापियां समाप्त हो गई। अब यह दूसरी बार बढ़िया कागज पर छपा है। जल्दी मंगाइये नहीं तो तीसरी बार छपने तक ठहरना पड़ेगा। मू० १।)

(९) **बोलशेविज़्म**—इसकी भूमिका **हिन्दी संसार में प्रसिद्ध बाबू भगवानदास जी गुप्त ने लिखी है। भूमिका में वे लिखते हैं** "इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा और देखकर प्रसन्न हुआ।" इसमें बोलशेविज़्म के आचार्य्य लेनिन के निर्भीक सिद्धान्तों का वर्णन, वर्तमान समय में वहां का राज्य व्यवस्था, समाज-व्यवस्था का उत्तम वर्णन है। शुरू में वहां की राज्यक्रान्ति का इतिहास, एक ही सप्ताह में प्रजा के हाथ में राज्य का आना, राज्य की फ़ौजें और पुलिस का प्रजा में मिलना आदि अनेक जानने योग्य बातों का वर्णन है। **अन्त में बोलशेविज़्म भारत में आवेगा या नहीं** इस पर खूब विवेचन किया गया है जो पढ़ने योग्य है। अवश्य पढ़िये मू० १।=)

(१०) **हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झण्डा**—(रचयिता म० गान्धी) इसमें भारत का राष्ट्रीय झण्डा कैसा होना चाहिये उसका खूब विस्तार से चित्र सहित वर्णन किया गया है। ऐसा झण्डा बनवाकर प्रत्येक भारतवासी को अपने घर पर लगाना चाहिये। इसके अलावा अभी हाल के म० गांधी जी के चुने हुए लेख और व्याख्यान भी दे दिये गये हैं। यदि आप असहयोग का पूरा रहस्य जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को और असहयोग दर्शन को दोनों को मंगा लीजिये। मू० १)

(११) **नवयुवको! स्वाधीन बनो**—इसमें अंग्रेजों के अत्याचारों को न सहने वाले और ७५ दिन तक जेल में उपवास कर मातृभूमि की स्वाधीनता के लिये प्राण त्यागने वाले आयरिश वीर टेरेन्स मेकस्विनी का संक्षिप्त जीवन, तथा लो० तिलक म० गांधी, ला० लाजपतराय, मौ० शौकतअली आदि देश-नेताओं के स्वाधीनता के भावों से भरे हुए और स्वराज्य का सीधा मार्ग बताने वाले उपदेश भी दिये गये हैं। सचित्र मू० ॥) यह पुस्तक प्रत्येक नवयुवक के हाथ में होना चाहिये।

(१२) **स्वतंत्रता की झनकार**—यदि आप राष्ट्रीय कवियों की चुनी हुई स्वतंत्रता से भरी हुई कविताओं को पढ़ना चाहते हैं तो इसे तुरन्त मंगाइये। सचित्र मू० ॥)

(इसके आगे कवर पृष्ठ देखिये।)

प्रस्तावना।

यह एक प्रथा सी पड़ गई है कि पुस्तक के आरम्भ में भूमिका या प्रस्तावना होनी ही चाहिए। कई पाठक सबसे पहिले भूमिका पढ़ने के लिए पुस्तक के पृष्ठ लौटने लगते हैं अतएव मैं भी दो चार शब्द लिखने के लिए विवश हुआ हूँ। इस पुस्तक के पहिले मैं एक पुस्तक "भारत में दुर्भिक्ष" नाम्नी लिख चुका हूँ। उसमें मैंने कोई १२।१३ आवश्यकीय विषयों पर थोड़ा थोड़ा प्रकाश डाला है इतने पर भी पुस्तक कोई २५० पृष्ठ की हो गई। तब से मैंने विचार कर रखा था कि एक एक विषय पर अलग अलग स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी जानी चाहिए, जिनमें विस्तार पूर्वक उस विषय पर लिखा गया हो। बहुत दिनों बाद मैं अपने उस विचार को किसी अंश में पूर्ण करने को तय्यार हुआ हूँ। सबसे पहिला प्रश्न राष्ट्र के सामने इस समय वस्त्र का है इसी लिए मैंने पहिले पहिल यह खादी का इतिहास लिखा है। इसके बाद "भारतीय पशुधन" नाम्नी पुस्तक लिखने का विचार है जो पाठकों की कृपा रही तो शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

जहाँ तक मेरा विचार है अभी तक वस्त्र पर हिन्दी भाषा में कोई इतनी बड़ी पुस्तक नहीं है अतएव यह पहिली ही कही जा सकती है। सम्भवतः यह अपूर्ण हो, तो भी जब तक इस विषय पर इससे उत्तम पुस्तक प्रकाशित न हो जावे तब तक लोगों के लिए यही काम देगी। मैं आशा करता हूँ कि प्रेमी पाठक इसकी त्रुटियों को भुला कर मुझे क्षमा करते हुए इसको आद्योपान्त पढ़ेंगे। पाठकों की इस कृपा से मैं अपने को सफल मानूँगा।

आगर—मालवा
कृष्णाष्टमी
सं० १९७८ वि०

वन्देमातरम्
आप का देश बन्धु
—गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"

विषय सूची।

खादी का इतिहास ।

वैदिक-काल ।

पहला अध्याय ।

क्या राजनीतिक और क्या आर्थिक, क्या सामाजिक और क्या नैतिक, सभी दृष्टियों से कपड़े का प्रश्न एक बड़े महत्व का प्रश्न कहा जा सकता है। भोजन के बाद मनुष्य के लिये यदि कोई दूसरी चिन्ता है तो वह एक-मात्र वस्त्र ही है। अतएव इस विषय पर सृष्टि के आदि से अब तक विचार करना है। वस्त्र में किस तरह का परिवर्तन होता आया है इसका विचार यहाँ करना है। राज्य परिवर्तन के साथ ही साथ देश में भी बड़ा भारी परिवर्तन होता है। अभी तक हमारे देश पर सिवाय भारतवासियों के दो अन्य विदेशी जातियों के पदार्पण हुए हैं। उनमें से पहिली यवन-जाति और दूसरी अंगरेज़ जाति है। इसलिये हमने भी हमारी पुस्तक के तीन विभाग किये हैं।

(१) वैदिककाल—आर्यों का शासन-समय (सृष्टि आरम्भ से सन् ९९७ ई० तक)।

(२) यवनकाल (सन् ९९७ ई० से सन् १७४८ ई० तक मुसलमानों का शासनकाल)।

(३) अंगरेज़काल (सन् १७४८ ई० से आज तक)। पाठक, इसको पढ़ते समय इस बात का ध्यान रखें।

खादी को खद्दर, गाढ़ा, खद्दा, रेजी, गजी आदि कई नामों से पुकारा जाता है। यह कपड़ा है। कपड़ा रेशम, ऊन, कपास, और सन वगैरः वृक्षतन्तुओं से बनता है। यहाँ खादी से मतलब भारतीय वस्त्र से है। आजकल देशीवस्त्र के लिये "खादी" शब्द ही प्रयोग होता है अतएव इस व्यापक शब्द का प्रयोग करना ही ठीक समझा गया। वास्तव में खादी से मतलब है मोटा खद्दर कपड़ा। सबसे पहिले सृष्टि के आदि में मोटा कपड़ा ही तैयार हुआ होगा। धीरे धीरे उन्नति करते हुए उसी का नाम मलमल, तंजेब और मसलिन भी हो गया। यह खादी का ही कायापलट है अतएव हमने खादी का इतिहास ही लिखना ठीक समझा।

शीत, घाम, और वर्षा से अपने शरीर की रक्षा करने के लिये तथा लज्जानिवारणार्थ, मानवजाति को वस्त्र की आवश्यकता बोध होने लगी। वह वैदिककाल था—उस समय के हमारे पूर्वज वेदाभिमानी थे। वे अपने जीवन का सर्वस्व वेद को समझते थे क्योंकि उसमें सारी विद्या और कलाओं का खजाना है। अब हमें यहाँ देखना है, कि वेद में जिस पर कि आर्यों का बड़ा भारी दावा "ज्ञान का भण्डार" होने का है—वस्त्र का या वस्त्र विषयक अन्य बातों का भी कहीं ज़िक्र आया है या नहीं? वेद के स्वाध्याय से मालूम होता है कि उसमें इस विषय के अनेक मन्त्र हैं, देखिये वस्त्र बुनने के लिये वेद में निम्न सात उपदेश हैं—

"तंतुंतन्वन्, रजसोभानुमन्विहि, ज्योतिष्मतः पथो रक्षधियाकृतान् ॥ अनुल्वणं वयत, जोगुवामपो, मनुर्भव, जनयादैव्यम् जनम् ।" ऋग्वेद १०।५३।६

(१) तंतुतन्वन् = सूत कात कर (spinning the thread) (२) रजसः भानुं अनु-इहि = उस पर रंग का तेज चढ़ाओ— (follow the shining colour and—) (३) अन्-उल्वणं वयत = और सूत में ग्रन्थियाँ न पड़ने देकर उससे कपड़ा बुनो (weave the knotless thread) (४) धियाकृतान् ज्योतिष्मतः पथोरक्ष = इस प्रकार तेजस्वियों के बनाये मार्गों की रक्षा करो (Guard the pathways well, which wisdom hath prepared) (५) मनुर्भव = मननशील बनो (Be thinker) (६) दैव्यंजनं जनय = दिव्य प्रजा उत्पन्न करो (Bring forth divine progeny) (७) जोगुवांअपः = यह कवियोंका काम है (This is the work of poets) तात्पर्य कि—हे मनुष्य ! तू यह न समझ कि सूत कातने तथा कपड़े बुनने का काम हीन है, नहीं यह तो श्रेष्ठ कवियों के करने योग्य भी है। क्योंकि इससे तेजस्वी पुरुषों द्वारा निश्चित किये मार्गों की रक्षा होती है। जिस प्रकार अच्छी सन्तान उत्पन्न करना आवश्यक है उसी प्रकार अपने लिए वस्त्र स्वयम् बुनना भी आवश्यक है। और देखिये—

"यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ॥ इमेवयन्ति पितरो य आययुः प्रवयाप वयेत्यासते-तते ॥ ऋ० १०।१३०।१

अर्थात्—(यः यज्ञ) जो काम (तंतुभिः विश्वतः ततः) सूत्र द्वारा

सर्वत्र फैलाया गया है और (एकशतम् देवकर्मभिः आयतः) एक सौ एक दिव्य कार्यकर्त्ताओं द्वारा विस्तृत किया गया है उसमें (इमे पितरः) ये रक्षक (ये आययुः) जो कि यहाँ पहुँचे हैं (वयंति) कपड़ा बुनते हैं, वे (तते आसते) ताने के साथ बैठते हैं और कहते हैं कि (प्रवय) आगे बुनो और (अपवय) पीछे का ठीक करो।

इन दो वेद मंत्रों से सिद्ध हो रहा है कि वेदों में कपड़ा बुनने का वर्णन है। जो लोग हम आर्यों की वैदिक सभ्यता को 'जंगली सभ्यता' बताते हैं और हँसा करते हैं उन्हें ये मंत्र ध्यानपूर्वक पढ़ने चाहिये। अभी आप आगे चल कर और भी देखेंगे कि वैदिककाल में हम लोग वस्त्रविषयक जितनी उन्नति कर चुके थे उतनी अभी तक कोई भी नहीं कर सका है। अब देखिये कपड़ा बुनने के काम में आने वाली वस्तुओं के नाम वेद में आये हैं—

वेमन = a Loom (य० १९।८३) गड्ढा, वह यंत्र जिस पर कि कपड़ा बुना जाता है।

सीसं = A lead weight (य० १९।८०) सीसे का वज़न अथवा लोहे का भार जो कपड़ा लपेटने के बेलन पर लगाया जाता है।

तसरं = a Shuttle (ऋ० १०।१३०।२ य० १९।८३) नाल, धड़की. नाली, जिसका उपयोग कपड़ा बुनने में होता है इसको इधर उधर फेंक कर ताने में बाना डाला जाता है।

ओतु। पर्यास—The woof (ऋ० ६।९।२ शतपथ ब्राह्मण ३।१।२।१८) बाना, भरनी।

तंतु । तंत्र । अनुच्छाद । प्राचीनतान । प्राचीनातान । The warp ताना, तानी कपड़ा, बुनने के लिये ताने हुए लम्बे धागे ।

मयूख = a Peg खूँटी, जो गड्ढे के पास होती है ।

ये शब्द वेद में कई जगह आये हैं । इनके देखने से कपड़ा बुना जाना निर्विवाद सिद्ध हो रहा है । अब देखिये वेद बताता है कि यदि जनसमाज को—राष्ट्र को—अपना धनैश्वर्य्य बढ़ाना है तो चरखे से सूत कातने का काम करना चाहिए ।

"तंतुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व । य० १५।७ अर्थात्—धन का पोषण करनेवाले सूत्र से खूब धन बढ़ाओ । वेद कहता है कि सूत कातना धन को बढ़ानेवाला है; इसीलिए सूत कातने का काम प्रत्येक घर में अवश्य होना चाहिए । ऐसा कौन व्यक्ति है जो धनवान होना नहीं चाहता ? सभी चाहते हैं तो सबको अपने अपने घर में चरखा चला कर सूत कातने का प्रयत्न करना चाहिए । जब तक हमारे देशवासी अपने अपने घर में सूत कातते रहे तब तक ही हम लोग धनैश्वर्य के स्वामी रहे और जब से हमने वेदाज्ञा के विरुद्ध कार्य करना आरम्भ किया तब से ही हम लोग निर्धनता के कठिन चंगुल में फँस कर दुःखों के भण्डार हो गये । अब देखिये वेद स्त्रियों के लिए सूत कात कर वस्त्र बनाने की आज्ञा देता है—

"ऋतायनी मायिनी संदधाते मित्वा । शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ॥ विश्वस्य नाभिंचरतो ध्रुवस्य कवेश्चित् तन्तुं मनसा वियन्तः ॥ ऋ० १०।५।३।

अर्थात्—(ऋतायनी) सरल स्वभाव से युक्त (मायिनी) कुशल दो स्त्रियें, जिन्होंने (शिशुंजज्ञतुः) सन्तान को उत्पन्न किया

है वे अपने अपने पुत्रों का (वर्धयन्ती) पालन करती हुई (ध्रुवस्य चरतः विश्वस्य नाभिं) चर और अचर के बीच में रहनेवाले (तन्तुं) सूत का (कवेः चित् मनसा) कवि की तरह मन की शक्ति के साथ (वियन्तः) कपड़ा बुनती हैं और (मित्वा) प्रमाण सहित (संदधाते) जोड़ती भी हैं। और देखिये पत्नी अपने पति के लिए कपड़ा बुनती है—

पत्नि पति के लिए कपड़ा बुनती थी।

"ये अन्तायावतीः सिचोयओतवोयेचतन्तवः। वासो-यत्पत्नीभिरुततन्नयोन मुपस्पृशात्।" अथर्व १४।२।५१

अर्थात्—ये (ये अन्ता) जो कपड़े के अन्तिम भाग हैं (यावतीः सिचः) जो किनारियाँ हैं (ये ओतवः) जो बाने हैं तथा (येच तन्तवः) जो ताना है इन सबों के साथ (यत् पत्नीभिः उतंवासः) जो पत्नियों के द्वारा बुना हुआ कपड़ा होता है (तत्) वह कपड़ा (नस्योनं उपस्पृशात्) हमारे लिए सुखदायक हो। इसी मन्त्र का भाषान्तर म० ग्रिफिथ ने अंग-रेज़ी भाषा में इस प्रकार किया है।

"May all the hems and borders all the threads that form the web and woof, the garment woven by the bride, be soft and pleasant to our touch." अब इस पर उक्त महाशय की टिप्पणी भी देखिए—"The garment that the young husband is to wear on the first day of his wedded life, and that, apparently has been made for him by the bride.

(देखो ग्रिफिथ अथर्व पृष्ठ १७६)

अर्थात्—विवाह के पहिले दिन तरुणपति को पहिनने के लिए विशेप प्रकार का कपड़ा उसकी पत्नी बनाती है। इससे सिद्ध हो रहा है कि कपड़े बुनने का काम घरू है, अथवा यों कहिये कि वेद इस धन्धे को घरू बनाने को कहता है। सूत कातने से लगा कर कपड़ा बुनने तक का काम घरेलू न हो तो पत्नी अपने पति के लिए वस्त्र नहीं बना सकती। एक वेदमन्त्र हमें बतला रहा है कि माता अपने पुत्र के लिए कपड़ा बुनती है। उसे भी देखिए—

"वितन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ॥ ऋग्वेद ५।४७।६

(मातरः पुत्राय वस्त्रा वयन्ति) माताएँ अपने पुत्रों के लिए कपड़ा बुनती हैं (अस्मैधियः अपांसि वितन्वते) इस बच्चे को सुविचारों और सत्कर्म्मों का उपदेश देती हैं। पिता का भी यही काम है—

"इमे वयन्ति पितरः। ऋ० १०।१३०।१

"ये पिता (वयन्ति) कपड़ा बुनते हैं। माता पिता दोनों अपने पुत्र के लिए वस्त्र बुनते हैं। इससे एक बात और निष्पन्न होती है कि पुरुषों का काम भी कातना और बुनना है। आज कल के माता पिता जब अपनी सन्तानों के लिए स्वयं अपने हाथ से वस्त्र न बना कर बाज़ारों से अशुद्ध और रोगोत्पादक महीन कपड़े ख़रीदते हैं तब चित्त को अत्यन्त दुःख होता है। पाठक, कहिये सच्चे माता पिता वे थे जो कि अपने हाथों कपड़ा बना कर अपनी सन्तान को पहनाते थे या आप हैं जो बाज़ार से, यहाँ से सैकड़ों मील दूरी पर समुद्र पार के बने विलायती कपड़े ख़रीद कर पहिनाते हैं? जब पति अपनी

प्रियतमा के हाथ से धना हुआ और पुत्र अपनी जननी द्वारा बना वस्त्र पहिनता है तब उसे कितना हर्ष, आनन्द और प्रेम उत्पन्न होगा !! अब देखिये वेद सूत्र बनानेवाले को बनिये से सहायता लेकर काम करने को कहता है—

"त्वं सोमपणिभ्य आ वसु गव्यानि धारय। ततं तंतुमचिक्रदः ॥ ऋग्वेद ६।२२।७

(त्वं) तू (पणिभ्यः) बनियों से (वसु) धन और (गव्यानि) गौएँ (आधारयः) कर्ज़ में ले और (तंतुंततं) सूत्र फैला कर (अचिक्रदः) गाते हुए काम कर। बनियों के पास धन और गौ आदि पशु होते हैं। अतएव जिनके पास पैसा न हों वे बनिये से कर्ज़ा लेकर अपना काम चलावें और बदले में उसे सूत या वस्त्र देकर ऋण चुका दें। अब वेद उस सहायक वैश्य को आज्ञा करता है—

"तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवतआशत। उतममुत्तमाय्यम् ॥" ऋग्वेद ६।२२।७

(उत्तमं तन्तुतन्वानं) "अच्छे ताना बाना करनेवाले को (उतद्दमं उत्तमाय्यं) और इस उत्तम बननेवाले को (प्रवतः) जो समर्थ हैं वे (अनु आशत) उचित सहायता दें।" वैश्य का कर्तव्य है कि वह उसकी धन और पशु से सहायता करे किन्तु और लोगों को भी उनकी मदद करना चाहिए। इन मन्त्रों से सिद्ध हुआ कि इस काम के करनेवालों की एक जाति होनी चाहिए। देखिए यह वेदमन्त्र जुलाहा (कपड़ा बनानेवालों) जाति का अस्तित्व बता रहा है—

"वासो वायोऽवी नामा वासांसि मर्मृजत् ।"

ऋ० १०।२६।६

(वासो वायः) कपड़ा वुननेवाला = जुलाहा (अवीना वासांसि) भेड़ वकरियों के वालों से कपड़ा वुनता है (आमर्मृ-जत्) उनको खूबसूरत वनाता है" इसके अतिरिक्त वेद में—"सिरी" "वयित्री" A female weaver, जुलाही कपड़ा वुननेवाली "वासोवायः" "वायः" A weaver जुलाहा कपड़े वुननेवाला पुरुष। ये शब्द जहाँ तहाँ आये हैं। इस पर यह शंका हो सकती है कि जव कपड़ा वुनने का धन्धा करनेवाली जाति अलग है तो प्रत्येक घर में कातने और कपड़ा वुनने की आवश्यकता ही क्या है ? इसका उत्तर यही है कि गृहस्थ अपने अपने खर्च के लिए वना ले और ऐसे लोग जिन्हें कपड़ा वुनना नहीं आता या किसी अन्य कारण से कपड़ा नहीं वना सकते उनके लिए कपड़े की माँग पूरी करने के लिए जुलाहे हैं। जैसे कई होटल, भटियारे और हलवाइयों के होने पर भी लोग घर में रोटियाँ वना कर खाते ही हैं उसी तरह वस्त्र भी समझिये। घर घर में कपड़ा वुनने की और कातने की वेद ने इसे आव-श्यक काम समझ कर ही आज्ञा दी है। वेद में इस काम को कवि के काव्य रचना से उपमा दी है। जिस प्रकार काव्य निर्माण एक वड़ी ही वुद्धिमानी का विषय है उसी प्रकार कातना और वुनना भी वड़े महत्व का काम है। जिस प्रकार अच्छे कवि की कविता अलंकारों से अलंकृत हो लोगों के मन को मुग्ध कर लेती है उसी तरह अच्छे जुलाहे के हाथ से वना हुआ, रंगीन, किनारीदार, नक्काशी किया हुआ, महीन वस्त्र लोगों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यही

कारण था कि भारत के बने वस्त्रों को देख कर विदेशीय लोगों ने उन्हें देवनिर्मित वस्त्र कह कर उनके सर्वोत्कृष्ट होने का प्रमाण दिया है। देखिए बेन्स साहिब ने लिखा है—

"ढाके का बना हुआ कपड़ा देखने से मालूम होता है कि यह मनुष्यों का बनाया हुआ नहीं है बल्कि देवताओं का बनाया हुआ है।"

वेद में वस्त्र निर्माण तथा सूत निकालने के अनेक मंत्र हैं*। उसमें कपड़े को रंगने उस पर कलप देने आदि का वर्णन विस्तार पूर्वक है। धोबी धोबिन के लिए भी वेद में शब्द आये हैं। यजुर्वेद अ० ३० में "वासःपल्पूली" शब्द धोबी का बोधक है। अथर्व १२।३।२१ में "आवाशुंभाति मलगइव वस्त्रा" लिखा है (मलगइव) जैसे धोबी वस्त्रों को स्वच्छ करता है वैसे ही पत्थर भी करता है। यजु ३०।१२ में "रजयित्री" कपड़े रँगनेवाली औरत का ज़िक्र है। सारांश कि वस्त्र विषयक सब कुछ बातें वेद में भरी पड़ी हैं। चाहिए ढूँढ़नेवाला। वैदिक समय में सूत कातने और कपड़ा बुनने का कार्य बड़ी उन्नतावस्था को पहुँचा हुआ था। जो लोग पूर्वजों पर नंगे रहने तथा जंगली पशुओं के चमड़ों से अपने शरीर ढाँकने का दोषारोपण करते हैं उन्हें वेद के इन वचनों को ध्यान से पढ़ना चाहिए। वेद में हिंसा वर्जित है देखिए—

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। य० अ० ३६।१८

---

* स्वाध्याय मंडल औंध जि० सतारा की "वेद में चर्खा" नामी पुस्तक इसके प्रेमियों को पढ़ना चाहिए।—लेखक

"मित्रदृष्टि से मैं सब प्राणिओं को देखता हूँ। हम सब आपस में मित्रता की दृष्टि से देखें।" भला जब वेद प्राणिमात्र को मित्रदृष्टि से देखने की आज्ञा दे रहा है तो वैदिककाल में वेदाभिमानी आर्य किस प्रकार प्राणियों का वध करके उनका चमड़ा पहिन सकते थे? हाँ नास्तिक—अनार्य, जंगली लोग जिस तरह का आचरण रखते थे या रखते हैं वह सब लोगों पर प्रकट है—सम्भव है वे लोग चमड़ा काम में लाते हों जैसे कि लोग आजकल भी प्रयोग करते हैं। चमड़ा प्राप्त करना कष्ट साध्य है और वस्त्र प्राप्त करना सुगम है। ऐसी दशा में अहिंसाधर्म के उपासक क्यों कर चमड़ा प्रयोग कर सकते हैं? वस्त्र बनाना न जानकर चमड़ा पहिनने का दोष हमारे पूर्वजों के सिर मँढ़ना, बिलकुल झूँठ बात है।

आर्यों को तो सब से पहले सूत की आवश्यकता है क्योंकि उनका यज्ञोपवीत बिना सूत के कदापि तय्यार नहीं हो सकता। अब निर्विवाद सिद्ध हो गया कि वैदिक समय में खादी खूब अच्छी तरह बुनी जाती थी और घर घर में चरखे और करघे खूब ज़ोरों से चला करते थे।

दूसरा अध्याय।

राजा, राजमन्त्री व सैनिकों के वस्त्र।

वैदिक समय में खादी घर घर बुनी जाती थी इस बात को हम पीछे वेद की ऋचाओं से अच्छी तरह सिद्ध कर चुके हैं। अब यह देखना है कि वे लोग उस खादी को पहिनते थे या नहीं? और पहिनते थे तो किस रीति से? यहाँ हम वेद का एक मन्त्र लिखते हैं जिसमें स्वदेशी पोशाक पहिनने का साफ साफ वर्णन है—

"अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टयः आत्वेषमुग्रमव ईमहे वयम्। ते स्वामिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः।" ऋग्वेद ३।२६।५

"(अग्निश्रियः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (सुदानवः) अत्यन्त दानशील (सिंहाः न हेषक्रतवः) सिंह के समान गम्भीर शब्द करनेवाले (रुद्रियाः) भयङ्कर (विश्वकृष्टयः मरुतः) सब वीर मनुष्य जो मरने के लिए तय्यार हैं (वर्षनिर्णिजः) अपने देश की पोशाक पहिननेवाले हैं उनसे (त्वेषंउग्रं अवः) तेजोमय उग्र रक्षा का बल (वयं आ ईमहे) हम प्राप्त करते हैं।"

"वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः

सुपेशसः। पिशंगाश्वाः, अरुणाश्वाः अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः।" ऋग्वेद ५।५७।१

"(वातत्विषः) हवा के तुल्य बलवान् (यमा इव सुदृशः) जोड़े के समान एक सा दिखाई देनेवाले (सुपेशसः) अच्छे रूपवाले (पिशंगाश्वाः अरुणाश्वाः) भूरे और लाल रंग के घोड़ों पर बैठनेवाले (अरेपसः) पापशून्य (प्रत्वक्षसः) विशेष शक्ति सम्पन्न (वर्ष निर्णिजः मरुतः) स्वदेशी कपड़े पहिनने-वाले वीर मरने के लिए तैय्यार हैं इसलिए वे (महिनाद्यौ इव उरवः) महिमा से द्युलोक के समान हैं।"

इन दोनों मन्त्रों में "वर्षनिर्णिजः" शब्द आया है जिसका अर्थ "स्वदेशी कपड़ा पहननेवाला।" होता है। "वर्ष" शब्द का अर्थ देश है जैसे भारत-वर्ष, हरिवर्ष "निर्णिज" शब्द का अर्थ पोशाक है। देखिए—

"शुक्रां वयंत्यसुराय निर्णिजं विपामग्रेमहीयुवः।"

ऋ० ६।६६।१

"(विपांअग्रे) बुद्धिमानों में भी अग्रगण्य (महीयुवः) मातृभूमि का साथ देनेवाले (असु-राय) जीवन का दान करने-वाले श्रेष्ठ के लिए (शुक्रानिर्णिजं) पवित्र कपड़ा (वयंति) बुनते हैं।" इसमें ("शुक्रां निर्णिजं वयंति") They weave bright raiment वे चमकदार कपड़ा बुनते हैं, अर्थ बता रहा है। इससे स्पष्ट हो गया कि "निर्णिज" शब्द वस्त्र, पोशाक के लिए है। "वर्ष निर्णिज" का अर्थ देशी पोशाक है।

उक्त दोनों मन्त्र यह भी बता रहे हैं कि देश के लिए बलि-दान होनेवाले ही स्वदेशी वस्त्र धारण करते हैं। अर्थात् योद्धा लोगों को खादी की वर्दी पहिनकर ही युद्ध के मैदान में जाना

चाहिए तभी वे विजयी हो सकते हैं। विदेशी वस्त्र पहिनकर युद्ध करनेवाला सिपाही कदापि अपने देश के लि विजय नहीं पा सकता। सारांश यह है कि वह (सिपाही)—शस्त्र-युद्ध हो या बिना हथियार का युद्ध हो—कैसा भी क्यों न हो. बिना खादी—देशीवस्त्र को धारण किए युद्ध का सैनिक कहाने का अधिकारी नहीं—और न वह युद्ध में विजय ही लाभ कर सकता है। अतएव अपने देश का कल्याण चाहनेवाले, और अपनी मातृभूमि पर अपने प्राणों को बलिदान करनेवाले व्यक्ति को खादी ही पहिनना चाहिए ऐसा वेद का उपदेश है। खादी ही एक मात्र स्वराज्य रक्षा का मूल मन्त्र है यह भी दोनों मन्त्रों से प्रकट हो रहा है।

देश के लिए अपने प्राणों की आहुति देनेवाले रणवीर के कैसे कपड़े होते थे ज़रा देखिए—

"प्रसेनानी शूरो, अग्रेरथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य-सेना ॥ भद्रान् कृण्वन्निन्द्रं हवान्तसखिभ्य आसोमो वस्त्रा-रभसानिदत्ते ।" ऋ० ९।९६।१

अर्थात्—"शूर सेनानायक रथों के अग्रभाग में होता है। उस समय उसकी सेना हर्षयुक्त होती है। वह सेनापति (सखिभ्यः) मित्रों के लिए कल्याणकारक बातें करता है इस तरह के वह सोम (रभसानि वस्त्रा) चमकनेवाले वस्त्र (आदत्ते) पहिनता है।" वैदिककाल में युद्ध के समय सैनिक टाँगों में घुटने तक की कछनी, बदन पर कुरता या कोट और सिर पर पगड़ी या साफ़ा पहिनते थे। ये सब देशी कपड़े खादी के होते थे। उन वस्त्रों पर लोह निर्मित कवच धारण करते थे। ये वस्त्र खादी ही होते थे इसका प्रमाण देखिए—

"युवं वस्त्राणिपीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह्सर्गाः ॥" ऋग्वेद १।२१।१५२।१

"(युवं) आप (पीवसा वस्त्राणि) मोटे खद्दर कपड़े (वसाथे) पहिनते हैं तथा (युवो) आपकी (मंतवः सर्गाः) मनन शक्ति का प्रभाव (अच्छिद्रा) दोष रहित है।" वेद मोटे कपड़े पहिनने की ही आज्ञा देता है। इसके लाभ हम आगे चलकर बतावेंगे। इस ऋचा से स्पष्ट हो गया है कि सर्वसाधारण मोटे कपड़े ही पहिनते थे—वे चाहे कपास के हों, ऊन के हों या रेशम के हों।

उस समय में सभापति—राजा कैसे वस्त्र पहिनता था उसका भी वर्णन देखिए—

"यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषेत्वं।
शिवं ते तन्वेतत्कृण्मः संस्पर्शेद्रूक्ष्णमस्तुते ॥"
अथर्व ८।२।१६

अर्थात्—जो चोग़ा अथवा कोट आप अपने लिए बनवा रहे हैं, उसे हम आपके शरीर के योग्य ऐसा बनाते हैं जो आपको आनन्द देगा तथा शरीर को सुख स्पर्श का दाता होगा।

"Whatever robe to cover thee or zone thou makest for thyself, we make it pleasant to thy frame: may it be soft and smooth to touch" और देखिये:—

"बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत्सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ २ ॥ परीदंवासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ॥ ३ ॥ अथर्व २।१३।

"बृहस्पति ने (एतत् वासः) यह पोशाक सोमराजा के (परिधान वै) पहिनने के लिए (प्रायच्छित्) दिया है। हे राजा! (इदेवासं) यह पोशाक (परिअधिथा) पहिनो (स्वस्तये अभूः) प्रजा का कल्याण करो और (गृष्टीनां अभिशन्दिया) प्रजा को विनाश से बचाओ।"

इस मन्त्र से प्रकट होता है कि राजा के कपड़े विशेष प्रकार के होते थे। वेद में जो जिस पद पर नियुक्त है उसे उसी पद के अनुसार अपना पहिनावा रखने का विधान है। जो राजा जिस देश पर शासन करे, वह तभी सच्चा राजा कहा जा सकता है जब कि वह अपने द्वारा शासित देश का बना वस्त्र ही पहिने। जो राजा राज्य तो करे विदेश में और अपने देश का कपड़ा मँगाकर पहिने ऐसा स्वार्थी राजा शीघ्र ही राज्य-भ्रष्ट हो अपने स्वार्थसाधन का उचित दण्ड पाता है। क्योंकि राजा वही है जो अपनी प्रजा और उनके देश की रक्षा करे। राजा को सच्चे मन से प्रजा के हित में हाथ बँटाना चाहिए और उसे निरन्तर उन्नति के पथ पर ले जाने की कोशिश करनी चाहिए। किन्तु हाँ, आज हमारे शासक अपने स्वत्वों की ओर बढ़नेवाली प्रजा को, अपने देश के बने वस्त्र-खादी पहिननेवाले को, देशभक्त न मानकर उससे परावृत्त करने का प्रयत्न करते हैं!!! यह भी एक शासन है और हम उसके आधीन हैं! अस्तु।

हमारे प्राचीन इतिहासों के देखने से मालूम होता है कि वैदिककाल में प्रायः चार प्रकार के वस्त्र होते थे (१) वल्कल अर्थात् छिलकेवाले = जैसे सण, रामबाण इ० (२) फल से उत्पन्न होनेवाले = जैसे कपास (३) रोमवाले = जैसे भेड़ बकरी आदि प्राणियों के रोम और (४) कीड़ोंवाले = जैसे रेशम।

तीसी तथा सण से बने हुए वस्त्र क्षौम कहलाते थे। रूई द्वारा बने हुए कपड़े को फलसम्भूत। भेड़ और दुम्बों के बालों से निर्मित वस्त्रों को रोमज और कीड़ों द्वारा उत्पन्न रेशम के बने रेशमी वस्त्र कहाते थे। इन चार तरह के वस्त्रों में से रेशमी वस्त्र अत्यन्त महँगा और बहुमूल्य होता है। प्रायः बड़े आदमी ही इनको पहिनते थे। राजा महाराजाओं के घर में रेशम के वस्त्र ही पहिने ओढ़े जाते थे। रेशम के कपड़े उन दिनों बहुत ही उत्तम होते थे। भारतीय रेशमी वस्त्रों के लिए अंग्रेज़ों की सम्मतियाँ हमने इस पुस्तक के यवनकाल में लिखी हैं। पाठक उन्हें देख लें।

वैदिक काल में भिन्न भिन्न प्रकार के वस्त्र।

अब यहाँ वैदिक काल के पहिनावे पर विचार करना है—यह देखना है कि वे कौन कौन से वस्त्र पहिनते थे। क्योंकि जो पहिरावा—पोशाक हमारे उन्नतिकाल में हम लोगों की थी वही हमें हमारे इस अवनतिकाल से उद्धार करनेवाली हो सकती है। क्योंकि हज़ारों वर्ष उसी पोशाक को पहिनकर हमारे पूर्वजों ने अपना जीवन बड़े ही चैन से बिताया है। सबसे पहिले हमें हमारा वेद ढूँढ़ना चाहिए। ऋग्वेद में लिखा है—

"बिभद्रापिं हिरण्ययं वर्णोवस्त निर्णिजम्।" १।२५।१३

"वरुण (हिरण्ययंद्रापिं) सोने के कलाबत्तू से नकाशी का काम किया हुआ कोट पहिनता है और (निर्णिजं) सुन्दर वस्त्र धारण करता है। "वेद में, धोतियाँ, चादरें, कुड़ते, कोट, चोगे और दस्तकारी किए हुए वस्त्रों का वर्णन है। जो ऊपर ओढ़ने की चादर है उसे वेद में "परिधान" कहा है। देखिए—

"यत्तेवासः परिधानं।" अथर्व ८।२।१६

"ओढ़ने का कपड़ा यह है।" एक वस्त्र शरीर के साथ होता है और एक उसपर ओढ़ने का होता है तथा एक बीच में रखने का होता है। वेद में इनके नाम—

नीवि (Under garment) शरीर के साथ पहिरने का वस्त्र।

वासः (Garment) बीच में रखने का कपड़ा।

अधीवासः (Over garment) सबके ऊपर ओढ़ने का वस्त्र। देखिए—

"यत्तेवासः परिधानं यां निविं कृणुषेत्वम् ।"

अथर्व ८।२।१६

"अधीवासं परिमातूरिहन्नह० ।" ऋ० १।१४०।६

इन मन्त्रों में ऊपर लिखे वस्त्रों के नाम स्पष्ट हैं। इनके अतिरिक्त वेद में और शब्द भी हैं। देखिए—

द्रापि = Coat of mail. Overcoat. Cloak. ओव्हरकोट, कपड़ों पर पहिनने का चोगा, कोट। ऋग्वेद १।२५।१३, ४।५३।२

अत्क = कोट, चोगा, ओव्हरकोट।

शामुल = Woolen shirt. ऊन का कुरता।

शामुल्य = Woolen garment. सर्दी के दिनों में।

पहिनने के लिए चोगा ऊन का। वेद में ये शब्द कई जगह आये हैं। ये शब्द वेद-कालीन वस्त्र सभ्यता को अच्छी तरह दिखानेवाले हैं। कई लोगों का कहना है कि आर्य्यलोग वस्त्रों की काट छाँट करके उन्हें सीना नहीं जानते थे—वे कपड़ों को वैसे ही सिर, धड़ और पैरों में लपेट लेते थे। ऐसा कहनेवाले महाशयों को ऊपर लिखे कोट और कुरते वगैरह का वर्णन देखकर अपनी भूल को स्वीकार करना चाहिए। हमने पीछे कसीदे

के काम का वर्णन भी किया है—वह भी उनके लिए प्रबल उत्तर है।

हाँ, यह कहा जा सकता है कि वे लोग रात दिन हम लोगों की तरह सिले हुए कपड़े नहीं पहिनते थे। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासी तो प्रायः सिला हुआ कपड़ा पहिनते ही नहीं थे। गृहस्थ लोग प्रायः सिले हुए वस्त्रों का धारण करते थे। यद्यपि वस्त्र से अपने शरीर को ढँके रहना इस समय की एक सभ्यता मानी गई है किन्तु प्राचीन काल में इसका कोई विशेष बन्धन नहीं था। रात दिन कपड़े लादे रहना शरीर को निर्बल बनाना है और वे लोग जो कई कपड़े अपने शरीर पर धारण करते हैं वे तो रात दिन मानों शारीरिक रोगों का आह्वान करते हैं। बहुत से वस्त्र पहिनने का विधान वेद में है किन्तु समय और कालानुसार! आज फ़ेशन के भूखे कई महाशय बनावटी 'जॅण्टलमेन' बनने की इच्छा से पेट पर पट्टी बाँध कर बहुत से वस्त्र पहिने फिरते हैं। भारत की इस बढ़ी चढ़ी दरिद्रता के कारण बदन को छूनेवाला उनके पहिनने का वस्त्र अत्यन्त गन्दा होता है, जो स्वास्थ्य के लिये विष है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि शरीर पर भले ही एक कपड़ा हो किन्तु स्वास्थ्यवर्द्धक हो और शरीररक्षक हो। पूर्वकालीन लोग खादी पहिनते थे जो सब तरह से उनके लिए हितकर होती थी। खादी के गुणों का थोड़ा बहुत उल्लेख आगे चल कर यथास्थान करेंगे। हाँ, इतना कहना यहाँ उचित समझता हूँ कि—"नंगे शरीर रहने वाला मनुष्य मोटा ताज़ा होता है।" लज्जानिवारणार्थ कोई एक वस्त्र पहिन लिया जावे तो अच्छा है। कई लोग जो खूब कपड़े पहिनने के आदी हैं इस बात पर हँसेंगे; परन्तु उन्हें इस बात का अनुभव करके देख लेना चाहिए। जो मनुष्य उघाड़े शरीर रहते हैं उन्हें

अपने शरीर की सुन्दरता दिखाने के लिए शरीर को पुष्ट बनाने का ध्यान रहता है और जो अपने शरीर की सुन्दरता वस्त्रों से बढ़ाने का ध्यान रखता है वह अपनी शारीरिक सच्ची सुन्दरता को नष्ट कर केवल मुख पर तेल चुपड़ कर अपनी बनावटी सुन्दरता दिखाता है किन्तु वह प्राकृतिक सौन्दर्य्य के आनन्द से वंचित रहता है, इसलिए कपड़े बहुत कम पहिनने चाहिएँ।

प्राचीन समय के विद्यार्थी हमारे वर्तमान विद्यार्थियों की तरह एक पर एक कपड़ा नहीं पहिनते थे। देखिये ब्रह्मचारी को पढ़ने के लिए मनु कहते हैं—

"नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्याचारः सु संयतः।"

अर्थात्—"ब्रह्मचारी हमेशा अपने ओढ़ने के वस्त्र से हाथ बाहर निकाल कर गुरु के सामने बैठे।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मचारी लोग पहले सिले हुए वस्त्र न पहिन कर केवल एक वस्त्र ओढ़ लिया करते थे। वे कोई एक कपड़ा बदन पर डाल लेते थे वह डुपट्टा हो, दुशाला हो या बँधी हुई धोती का अर्द्ध भाग हो।

प्राचीन इतिहासों में चादर दो प्रकार की होने का प्रमाण मिलता है (१) एक पाट की और (२) दो पाट की। एक पाटवाली का नाम प्रावृत् और दो पाटवाली को लोग दुकूल कहते थे। दुकूल प्रायः तीसी या सण के छिलकों का बनता था किन्तु प्रावृत् के लिए कोई नियम नहीं था। लोग उन दिनों प्रायः नंगे सिर घूमा करते थे। सभा और उत्सव के समय लोग अपने सिर को वस्त्र से ढँक लेते थे। उस सिर के लपेटने के वस्त्र को "उष्णीष" कहते थे। यह "उष्णीष" शब्द वेद में भी आया है। देखिए—

"विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं।" अथर्व १५।२।५

इसे हम लोग साफ़ा, पगड़ी, फेंटा, पाग, इत्यादि नामों से पुकारते हैं। उन दिनों सिर ढ़कने का एक साधन और था वह "मुकुट" कहलाता था। उसे उस समय में राजा महाराजा ही धारण करते थे। वह सोने चाँदी का बना और मूल्यवान मणि-मुक्ताओं से जड़ा होता था। उस समय के चक्रवर्त्ती राजा इतने बहुमूल्य मुकुट पहिनते थे कि जिनका मूल्य कृतना बहुत ही मुश्किल काम होता था। एक एक मणि करोड़ों रुपयों के मूल्य की होती थी। ऐसी अनेक मणियाँ एक चक्रवर्त्ती के मुकुट में जड़ी होती थीं। उन मुकुटों को आजकल हम लोग टोपी कहते हैं। फर्क सिर्फ़ इतना ही है कि वे बहुमूल्य होते थे और ये देश की दरिद्रा वस्था के अनुसार अल्पमूल्य हैं। वे सोने चाँदी के होते थे और ये कपड़े की होती हैं। योद्धा लोग युद्ध के समय अपने सिर पर खादी का साफ़ा बाँधते थे और उस पर सिर की रक्षा के लिए कवच पहिनते थे। क्षत्रियवीर या जो युद्ध-भूमि में शत्रु से लड़ने जाते थे वे खादी के साथ ही साथ आवश्यकतानुसार थोड़ा बहुत चमड़ा भी मज़बूती के लिए काम में लाते थे। धनुर्द्धर को अपने बाँयें हाथ की कलाई पर धनुष की डोरी की फट-कार को रोकने के लिए चमड़े की पट्टी बाँधनी पड़ती थी और दाहिने हाथ की अँगुलियों की रक्षा के लिए हाथ में चमड़े के दस्ताने पहिनने पड़ते थे।

औरतें घरों में हांथ के कते और हांथ के बने वस्त्र की साड़ी पहिना करती थीं; परन्तु त्यौहार, उत्सव तथा विवाह आदि में लहँगे पहिनती थीं। वैदिक काल में साड़ी को "शाटक" और लहँगे को "चंडानक" कहते थे। स्त्रियाँ शरीर के ऊपरी भाग में चोलियाँ पहिनती थीं। वह आधी बाँह तक होती थी इस कारण उसे "कूर्पासक" कहते थे। वे जब लहँगा

और चोली पहिनती थीं तब अपने शेष नंगे शरीर को एक वस्त्र से ढाँक लेती थीं। उस वस्त्र का नाम अवगुण्ठन था। इस अवगुण्ठन वस्त्र का एक नाम "अधीस" भी था। यह नाम वेद में भी पाया जाता है—

"अधीवासं परिमातुरिहन्नह० ॥" ऋग्वेद १।१४०।९ अर्थात्—"यह माता का ऊपर ओढ़ने का वस्त्र है।" इसे आज कल लोग ओढ़नी, लूगड़ा, लुघड़ा, फरिया के नाम से पुकारते हैं। उन दिनों वस्त्र धारण करने के दो भेद थे। एक संव्यान (ऊपरी) और दूसरा उपसंव्यान (भीतरी)। ऊपरी वस्त्र नाभि से ऊपर और भीतरी नाभि से नीचे रहता था। उस समय में घर घर चरखे और करघे होने के कारण सभी खादी पहिनते थे। उस समय भारतवर्ष में ही क्या, पृथ्वी के कोने कोने में वेद का उपदेश माना जाता था। ईसवी सन् के ११०० वर्ष पूर्व अर्थात् आज के लगभग ३००० वर्ष पूर्व होमर नामक प्रसिद्ध कवि के समय में ग्रीक (यूनान) देश के एक राजा की राजमहिषी चर्खा कातती और कपड़ा अपने हाथ से बुनती थी। देखिए—

"In the odyssey we find the queen engaged in managing her household and her weaving, the princess and her maids busy with the family washing"

भला जब राजमहिषी तक कपड़ा बुनने का काम करती हो तब प्रजा में कितने चर्खे और करघे उन दिनों वहाँ चलते होंगे इसका अनुमान पाठक स्वयम् लगा लें।

तीसरा अध्याय ।

राजा के आचरण का प्रजा पर प्रभाव ।

खादी के विषय में जो कुछ भी हमें वैदिक काल का वर्णन करना था कर चुके। अब हमें यह दिखलाना है कि कई हज़ार वर्ष लगातार खादी की देश में इस प्रकार वृद्धि और उन्नति क्यों होती रही और कुछ सौ वर्षों में ही इसका इस प्रकार अधःपतन क्यों हो गया? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर प्रत्येक मनुष्य दे सकता है, तो भी उस विषय पर थोड़ा बहुत लिख देना कर्तव्य है। यहाँ हम यह बतला देना चाहते हैं कि राष्ट्र का शासक जैसा होता है वैसे ही उस राष्ट्र के रहनेवाले मनुष्य भी हो जाते हैं। मुख्यतया भाषा, भेष, और धर्म ये तीनों पहिले की बनिस्बत बदली हुई शक्ल में नज़र आने लगते हैं। तभी तो हमारे पूर्वजों ने एक बात हम लोगों के लिए नियम सी लिख दी है। देखिए—

"राज्ञेधर्मािण धर्मिष्ठा पापे पापा समे समा ।
प्रजा तदनुवर्त्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ।"

"जैसे राजा वैसी प्रजा" एक कहावत चली आती है। इसी नियम के अनुसार जिस तरह भारत पर शासकों का शासन

स्थापित होता गया उसी तरह परिवर्त्तन भी होता गया। उदाहरण के लिए त्रेतायुग के रावण-राज्य को ले लीजिए,—जैसा वह अधर्मी, अत्याचारी और अन्यायी था वैसी ही उसकी सारी प्रजा थी। यदि कोई एकाध धर्मात्मा पुरुष विभीषण जैसा था भी तो उसे अपने को उन्होंकी हाँ जी हाँ जी करके रहना पड़ता था। दूसरा राज्य उसी समय एक और था वह था "राम-राज्य" —"उसमें प्रजा सुखी, धार्मिक और धनैश्वर्य्य से पूरित तथा सब तरह से आनन्दित थी। उनके राज्य में क्या बल्कि दूर दूर तक प्रजा को कष्ट पहुँचाने वाला नहीं था।" इन दोनों उदाहरणों से यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि जैसे राजा के विचार होते हैं वही विचार प्रजा के भी होते हैं। प्रजा का और राजा का घनिष्ट सम्बन्ध है। देखिये वेद ने प्रजा और राजा के सम्बन्ध को कितना साफ़ दिखाया—

"अयमुते समतसि कपोत इव गर्भधिम्
वचस्तच्चिन्न ओह से।" "सामवेद"—

इस मन्त्र में राजा को कबूतर और प्रजा को कबूतरी कहा है। यह वैदिक अलंकार विशेष मनन करने योग्य है। कबूतर और कबूतरी का जो प्रेम होता है वह उसके देखनेवा ले को ही मालूम है। खास करके कबूतर, कबूतरी से अधिक प्रेम करता है—तात्पर्य्य यह है कि राजा को प्रजा से खूब प्रेम रखना चाहिए। प्रजा से शत्रुता करके कोई राजा आज तक चिरस्थायी राज्य नहीं कर सका: इसकी साक्षी हमारे इतिहास दे रहे हैं। राजा को सदा सत्य और न्याय का ध्यान रखकर ही शासन करना चाहिए। अन्यायी राजा कभी टिक नहीं सकता। देखिये वेद ने राजा को न्याय और सत्य का पुत्र कहा है—

"अभिप्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथाविदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ।" सामवेद—

जो राजा सत्य और न्याय का ध्यान रखकर अपने शासित पर शासन करता है वही चिरस्थायी रह सकता है। जो सत्य और न्याय का अनुयायी शासक होता है उससे कभी भी प्रजा का अहित नहीं हो सकता। वैदिक काल के सभी शासक सत्य और न्याय का ध्यान कर राज्य करते थे। यही कारण था कि वेद के बताये मार्ग को कोई शासक नष्ट नहीं करता था; बल्कि उसकी रक्षा के प्रयत्न करते थे। इसी कारण वैदिककाल में खादी ने आशातीत उन्नति कर दिखाई। वह उन्नति की चरमसीमा को यहाँ तक पहुँची कि उस समय भूतल पर कोई देश में उसकी बराबरी करने वाला वस्त्र नहीं था।

भेष, भाषा, भाव सब कुछ वैदिक होने के कारण वैदिक प्रजा और वैदिक राजा वैदिककाल में आनन्दपूर्वक सुख से अपने दिन बिताते थे। भाषा और भेष की रक्षा राजा के हाथ में है। खादी की इस प्रकार उन्नति उस समय के शासकों की कृपा थी। यदि उस समय कोई विधर्म्मी और विदेशी राजा हमारे देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता तो खादी को शीघ्र ही दुर्दशाग्रस्त देखना पड़ता। तात्पर्य्य यह है कि स्वराज्य का और खादी का बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। इसीलिए वेद भी स्वराज्य प्राप्ति के लिए कहता है:—

"यदजः प्रथमं संबभूव सहतत् स्वराज्य मियाय ।
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ।" अथर्व १०।७।३१

अतएव प्रत्येक भारतीय को अपनी प्राचीन पोशाक के लिये खादी और स्वराज्य की प्राप्ति के निमित्त तन मन धन से तय्यार हो जाना चाहिए।

यवनकाल।

पहिला अध्याय।

दिन के बाद रात होती है और "जो चढ़ता है वही गिरता है" यह एक प्राकृतिक नियम है। आर्य्य-जाति के अभ्युदय तथा उन्नति का प्रचण्ड भास्कर विश्व को अपने तेज़ से चकित करता हुआ धीरे धीरे अस्ताचल की ओर चलने लगा। वैदिक काल का अधःपतन आरम्भ हो गया। लोग अज्ञान और अविद्या के गहिरे कीचड़ में दिन बदिन अपने को जान बूझकर डालने लगे। जहाँ अविद्या ने अपनी टाँग अड़ाई वहाँ सब दुर्गुणों ने भी अपना आक्रमण साथ ही साथ किया। देशवासी आपस में ज़रा ज़रा सी बातों पर सिर फोड़ने लगे। प्रेम और धर्म का बुरी तरह गला दबोचा जाने लगा। द्वेष और फूट को लोगों ने अपनाना आरम्भ कर दिया। भाई से भाई लड़ने लगे। चोरी, ठगी, व्यभिचार, अनाचार, जुआ, छल, धोखा, विश्वासघात, मद्यपान, पाखंड, स्पर्द्धा, डाह, आदि देश को बर्बाद करने वाले कामों का बाज़ार गर्म होने लगा।

जब कि देश की यह दुर्दशा हो तब ऐसा कौन है जो उस-पर अपना प्रभुत्व स्थापन करने की इच्छा न करता हो। क्योंकि

किसी गिरते हुए देशपर प्रभुत्व स्थापन कर लेना कोई कठिन बात नहीं है। लोग तो इसी ताक में बैठे रहते हैं—एक बात यहाँ यह बतला देना विषय के विरुद्ध नहीं होगा कि—"इस समय लोग एक ईश्वर की उपासना छोड़कर, मनमाने धर्म और पंथों के अनुयायी हो रहे थे।" अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग सभी अलाप रहे थे। कोई डेढ़ ईंट की मस्जिद बना रहा था तो कोई डेढ़ चांवल की अपनी खिचड़ी अलग ही पका रहा था। सैकड़ों देवता और सैकड़ों धर्म बन गये। एक दूसरे की नहीं सुनता था—प्रत्येक अपनी अपनी अलग ही धुनता था। कोई कुछ कह रहा है तो कोई कुछ कर रहा है। इतिहासों की मिट्टी पलीद कर डाली। अपने अपने धर्म की पुष्टि के प्रबल प्रमाण इतिहासों तथा धर्मग्रन्थों में घुसेड़ने लगे। जिस प्रकार अँधेरे में मनुष्य इधर उधर भटकता है ठीक उसी तरह हम भारतीय भी अविद्यारूपी घोर अन्धकार में भटकने लगे।

इधर हमारे देश में हमारा पतन हो रहा था तो उधर जलहीन वीरान और अशिक्षित देशों में ज्ञानसूर्य्य उदय हो रहा था। अर्थात् छठीं शताब्दी में अरब देश में एक महापुरुष का जन्म हुआ जिसका नाम हज़रत मुहम्मद साहिब था। कुछ दिनोंतक तो अरब के अशिक्षित निवासियों ने हज़रत की बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया किन्तु वह धर्मवीर अपने कर्तव्य में भिड़ा ही रहा। फल यह हुआ कि उसने लोगों को अपने विचारों के अनुकूल बना ही लिया। उनका आपस में लड़ना झगड़ना छुड़ा दिया और उन्हें विविध देवों की उपासना से हटाकर एक परमात्म देव की उपासना करना बतलाया। मूर्तियाँ बनाकर लोग उसे ईश्वर मान बैठे थे किन्तु हज़रत ने यह काम

धर्म के विरुद्ध; अज्ञानयुक्त और निंद्य ठहराया। हज़रत मूर्ति-पूजा को घृणा की दृष्टि से देखते थे और उसके उपासक को धर्मच्युत—काफ़िर कहते थे। मूर्तियों से उन्हें इतनी चिढ़ थी कि उन्हें फोड़ने तथा उनके उपासकों को वध कर डालने में स्वर्ग की प्राप्ति होना कह सुनाया था। उनके उपदेशों का संग्रह अब भी पुस्तक रूप में मिलता है, वह अरब देश की भाषा अरबी में लिखा हुआ है—उसका नाम कुरान है। उनके चलाए हुए धर्म का नाम 'इस्लाम' धर्म है।

अरबवालों के साथ हज़रत मुहम्मद ने बड़ा ही उपकार किया। ज्योंही उन्होंने सब को धर्म के एक धागे से बाँधा त्यों ही देश की कायापलट हो गई। धर्म का देश से बड़ा भारी सम्बन्ध है—धर्म ही राष्ट्रीयता, और जातीयता की जड़ है। जहाँ एक धर्म के अनुयायी हैं वहीं प्रेम है, वहीं आनन्द है और सच्चा स्वर्गीय सुख है। इसके विरुद्ध दुःख ही दुःख है। स्वतन्त्रता के लिए एक धर्म की बड़ी भारी आवश्यकता है। या साफ़ शब्दों में यों कहिये कि स्वतन्त्रता, स्वराज्य, जातीयता और प्रेम की जड़ एकमात्र धर्म के ऊपर अवलम्बित है। "प्रत्यक्षं किं प्रमाणं?" के अनुसार सामने दोनों उदाहरण हैं—भारत में धर्म-मत पन्थों की बरसाती मेंढ़कों के समान सृष्टि ने हमें अधोगति को पहुँचा दिया और अरब में एक मज़हब होते ही जाग्रति हुई जिसका फल आप आगे पढ़ेंगे ही।

अरब और भारतवर्ष की धार्मिक हलचल पर इतना लिखना इस समय आवश्यक ही था। पाठक, संभवतः इस विवेचना के लिए आक्षेप करें किन्तु पाठकों को यह जान लेना चाहिए कि भारतवर्ष पर यवनों के आक्रमण का मूल कारण एक मात्र धर्म का प्रचार था। उनका यह निश्चय था कि हम

अन्य देशों में अपने धर्म का प्रचार करेंगे—और जो हमारे धर्म के अनुयायी नहीं हैं उन्हें वध करके उनका धन, राज्य और माल असबाव लूटेंगे। उनका यह धार्मिक निश्चय था कि अपने धर्म के विरुद्ध मनुष्यों से युद्ध करना पवित्र युद्ध है जो मोक्ष का देने वाला है। और जो उनके धर्म को मान्यदृष्टि से देखे तथा अपना धर्म परिवर्तन न करे उससे एक बड़ा भारी कर लेना चाहिए जिसे "जज़िया" कहते थे।

इस सिद्धान्त को लिए हुए अरब वालों ने अरब के अतिरिक्त देशों पर हमला किया और लगभग एक सौ वर्ष में उन्होंने पर्सिया, तुर्क, और अफगानिस्तान पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया और सबों को मुसलमान बना लिया। बहुत से ऐसे लोग जिन्होंने यवनधर्म को नहीं माना और न जज़िया ही दिया, वे अपना देश छोड़ छोड़ कर भारत में आ गये। वे लोग अब पारसी जाति के नाम से प्रसिद्ध है। आस पास के देशों और राज्यों पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापन करने के बाद अरब वालियों की दृष्टि हमारे भारत पर आ जमी। उस समय भारत के धनैश्वर्य्य का वर्णन मि० मार्सडन इस प्रकार करते हैं—

उस समय भारतवर्ष पृथ्वी के समस्त देशों से अत्यन्त धनवान था और पश्चिमीय देशों के साथ उसका अफ़गानिस्तान के मार्ग से बड़ा भारी व्यापार चलता था।"

इस व्यापार में कपड़े का व्यापार मुख्य था। भारतीय व्यापारी ऊँटों पर माल लाद कर भारत से बाहर व्यापार करने के लिए जाते रहते थे। उन व्यापारियों के मुँह से ग़जनी के बादशाह महमूद ने भारत की साम्पत्तिक अवस्था का हाल सुना और धर्म युद्ध के लिए भारत पर आक्रमण किया। यहाँ से यवन राज्य का भारत में श्री गणेश हुआ।

दूसरा अध्याय ।

यवनकाल में खादी की आश्चर्यजनक उन्नति ।

भारत में यवनराज्य के आगमन से खादी को किसी तरह की हानि नहीं पहुँची। हाँ, साम्पत्तिक अवस्था में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य आया। क्योंकि बहुत से बादशाह धन के लोभी इस देश में आ गये थे। यवन-राजाओं का उद्देश केवल धर्म और धन था। व्यापार में उन्होंने किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। वे बादशाह होकर व्यापार में अपनी टाँग अड़ाना क्षुद्रता अथवा अपनी तौहीन समझते थे। इसी कारण देश का व्यापार सुरक्षित रहा। जब व्यापार में ही कुछ गड़बड़ी पैदा नहीं हुई तो खादी के लिए क्या होना था ?

प्रसिद्ध बादशाह अकबर का शासन भारत पर सन् १५५६ ई० से सन् १६०५ ई० तक रहा था। ज़रा उन दिनों खादी की उन्नत दशा का हाल पढ़िए। आपको आश्चर्य तो होगा किन्तु आश्चर्य करने की बात नहीं है। सुनिए—

"एक जुलाहे कारीगर ने बादशाह अकबर को बहुत बढ़िया खादी का थान एक बाँस की छोटी सी नली में रखकर दिया

था। वह थान इतना लम्बा चौड़ा था कि उससे अम्बारी सहित एक हाथी बखूबी ढाँका जा सकता था।"

कहिये, यह खादी की उन्नति का समय नहीं तो और क्या था? इतनी बढ़िया खादी तैयार होना क्या देश की गौरव वृद्धि नहीं कही जा सकती? ढाके की मलमल का नाम आज कई शताब्दियों के बाद भी लोगों के मुँह पर है। ढाके की मलमल की बराबरी करनेवाला अभी तक शायद ही कोई कपड़ा विदेशों में बना हो! वहाँ की मलमल की प्रशंसा जहाँ तहाँ पुस्तकों में देखी जाती है—हम भी यहाँ मि० बोथ की लिखी हुई "कॉटन मेन्यूफ़ेक्चर्स ऑफ़ ढाका" से कुछ वाक्य यहाँ लिखते हैं—

"Aurangzeb once reproved his daughter for showing her skin through her clothes. The daughter justified herself by asserting that sbe had on seven suits or jamas."

एक बार औरंगज़ेब अपनी पुत्री पर यह देखकर अत्यन्त नाराज़ हुआ कि उसका शरीर वस्त्र में से साफ़ दिखाई दे रहा था। तब उस राजकन्या ने अपनी सफ़ाई में कहा कि मैंने इसको सात तह करके पहिना है—इतने पर भी यदि अंग दिखाई दे तो मेरा क्या वश है? मिस्टर मेनिम कहते हैं—

"Some centuries before our era they produced muslins of that exquisite texture which even our ninteenth centuary machinery cannot surpass (see ancient and medieval India Vol I P. 359)"

अर्थात् कई शताब्दियों पूर्व भारत में इतना अच्छा वस्त्र बन

कर तैयार होता था जितना कि उन्नीसवीं शताब्दी की मशीनें भी नहीं बना सकी हैं। पाठक! यह हमारी खादी की अत्युच्च दशा का वर्णन एक पश्चिमीय सज्जन कर रहे हैं। यही बात "एन-सायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" के पृष्ठ सं० ४४८ में भी लिखी है—

"That the exquisitely-fine fabrics of cotten have attained to such perfection that the modern art of Europe, with all the aid of its wonderful machinery, has never yet rivalled in beauty the product of the Indian Loom." यूरोप देश की पूर्ण मशीनें भी अभी तक भारतीय करघों से अच्छा सूत या वस्त्र नहीं निकाल सकी हैं। बात तो यों है कि प्रकृति ने ही भारत को इस विषय की विविध सुविधाएँ प्रदान की हैं। देखिए मिल साहिब लिखते हैं—

"His (Hindu's) climate and soil conspired to furnish him with the most exquisite material for his art, the finest cotton which the earth produces."

"भारतीय जलवायु और भूमि भारत को उसकी कारीगरी के लिए उत्कृष्ट सामग्रियाँ प्रदान करती हैं। उत्तम कपास भी जिसे भूमि प्रदान करती है।" मि० एलफिन्स्टन भी अपनी 'हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया' पृष्ठ १६३ और १६४ में लिखते हैं—

"The beauty and delicacy of which was so long admired, and which in fineness of texture, has never yet been approached in any country."

अर्थात्—हिन्दुस्थानी रुई के वस्त्र भारतवर्ष में इतने उत्तम बनते हैं कि अभी तक किसी भी देश में वैसे नहीं बन सके हैं।

यह सब कुछ लिखने का तात्पर्य्य यह है कि यवनकाल में खादी पर उन्होंने कोई भी अत्याचार नहीं किया। यद्यपि उन दिनों यावनी देशों में भी बढ़िया से बढ़िया कपड़ा तय्यार होता था तथापि उन्होंने यह इच्छा नहीं की कि भारतीय कपड़े के व्यापार को पदाक्रान्त करके अपने देश के बने वस्त्रों से भारत के बाज़ार भर दिये जावें। यदि वे चाहते तो कर सकते थे, क्योंकि उनका शासन था। कहावत भी है "जिसकी लाठी उसकी भैंस"। लेकिन बात यही थी कि उनका भारत में आने का कारण अपने धर्म का प्रचार शस्त्र-बल से था। एक बात और भी थी कि वे योद्धा बन कर भारत में आये थे, इसलिए उनका सारा समय मार काट, खून खराबी और मार मार कर मुसलमान बनाने में ही बीता। राज्य-परिवर्त्तन के समय जो जो आपत्तियाँ देश पर आनी चाहिएँ वे सभी राष्ट्र पर आईं और विदेशियों का प्रभुत्व देश पर स्थापित हो गया। एक बात भारत के लिए बड़ी ही हितकर हुई—वह यह कि मुसलमान लोग आने के बाद भारत में ही बस गये। वे भारतीय हो गये—वह उनकी जन्म-भूमि हो गई और उनकी सम्पत्ति विदेश में न जाकर भारत की भारत में ही रह गई।

तीसरा अध्याय ।

मुसलमानों का पहनावा ।

यवन काल में चरखा और करघा सुरक्षित रहा और वैदिक-काल की भाँति घर घर में इसका प्रचार रहा। मुसलमान भाइयों ने इसकी उपयोगिता पर मोहित होकर इसे अपना लिया और कातने बुनने लगे। इसका प्रमाण, आज भारत में हिन्दू और मुसलमानों के घरों में प्रत्यक्ष है। आज भारत में हिन्दू और मुसलमान दोनों के घरों में चरखा चलता है और दोनों जातियाँ खादी बुनने के कार्य को बखूबी जानती हैं। उस समय कोई जाति हमारे इस खादी की विरोधी नहीं थी। यवनकाल में यवनों के भारत में पदार्पण होने से वस्त्र के व्यापार में तो कुछ भी अन्तर नहीं आया किन्तु पोशाक में थोड़ा बहुत अन्तर आया।

यद्यपि भारतीय अपनी पोशाक को सर्वोत्तम मानते थे तथापि शासक के पहिनावे का शासित पर बड़ा भारी प्रभाव होता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार भारतीय वेष में थोड़ा बहुत अन्तर आ गया। अफ़ग़ान, तुर्क, पर्शिया और अरब ये देश भारत के निकटवर्त्ती देश हैं और जल-वायु भी भारत के समान ही प्रायः इन देशों में है, अतएव भेष में विशेष अन्तर

कदापि नहीं हो सकता। इसके अलावा सभ्य भारत के बहुत से व्यापारी इन देशों में अपना माल बेचने जाते आते रहते थे जिन्हें देख कर वहाँ के निवासियों ने अपने वस्त्रों में यथोचित परिवर्त्तन कर लिया था। ये लोग कुरते, कोट, साफा, पगड़ी वग़ैरः पहिनते थे किन्तु उनकी थोड़ी सी कायापलट कर ली थी। आर्य लोग धोती बाँधते थे तो ये लोग पजामा, पायजामा, खूसना, सूथना पहिनते थे। अचकन का प्रचार इसी समय में हुआ था। एक पोशाक़ और थी जिसे बड़े लोग ही पहिनते थे। उसका नाम जामा था। ये लोग आर्यों की तरह सिर पर पगड़ी या साफा ही पहिनते थे। ये लोग टोपी भी लगाया करते थे। इन लोगों की टोपी आर्यजाति की टोपी से निराले ढंग की ही होती थी। औरतें घाघरे-लहँगे नहीं पहिनती थीं, वे भी अपनी सारी पोशाक़ मर्दों की तरह ही रखती थीं। फ़र्क़ बिलकुल थोड़ा सा ही था और वह यह कि वे सिर में साफ़ा नहीं बाँधती थीं बल्कि हिन्दू औरतों की तरह एक कपड़ा सिर पर ओढ़ती थीं जिसको लूबड़ी कहा जा सकता है।

यवन जाति स्वभाव से ही बड़ी लड़ाका है। महात्मा मोहम्मद साहिब के पहले ये लोग आपस में ही खूब लड़ते भिड़ते रहते थे। जब हज़रत ने उन्हें आपस में व्यर्थ ही लड़ने भिड़ने के दोष बताये तब उन्होंने आपस का युद्ध बन्द कर दिया इधर भारत लड़ाई को बुरा समझनेवाला था। यहाँ के लोग शान्तिप्रिय और अध्यात्मवादी रहे हैं। उनका जीवन ज्ञानार्जन में ही व्यतीत होता था। लेकिन यह भी असंभव है कि शान्ति-पाठ करते रहने से ही काम चल जावे और कभी भी युद्ध न करना पड़े। इसलिये आर्यों ने एक वर्ण जो युद्ध को अच्छा समझता था और उससे प्रेम करता था अलग ही बना दिया;

जिसे वे लोग क्षत्रिय कहते थे। मुसलमानों में यद्यपि उनकी जाति के चार विभाग हैं—तथापि भारतीय आर्यों की तरह गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण-व्यवस्था नहीं है। यही कारण मुसलमानों के पायजामा पहिनने का है। जो लोग लड़ने भिड़ने वाले होते हैं उन्हें युद्ध के समय धोती बाँधना असुविधाजनक होता है। यदि ये लोग भी भारतवासियों की तरह शान्ति को अधिक चाहनेवाले होते तो सम्भवतः इनका पहनावा भी धोती होता। हमारे क्षत्रिय लोग भी युद्ध में पायजामा पहिनते थे। इससे स्पष्ट होता है कि आर्यों और यवनों के पहरावे में कुछ विशेष अन्तर नहीं होता था।

वैदिक काल में वस्त्र बहुत ही सस्ते थे या यों कहिये कि उस समय में किसीको भी भोजन वस्त्र की चिन्ता नहीं थी। इधर यवनकाल में एक मनुष्य की पोशाक में कितना व्यय होता था यह दिखलाना ठीक है, क्योंकि इस काल का अंगरेज़ काल से मिलान करना पड़ेगा।

देखिये—

१ बढ़िया साफा या पगड़ी मूल्य	१)	१ अच्छा दुपट्टा	।।।)
१ कुरता, मिरज़ई या कोट	।)	१ जोड़ी जूते	।।।)
१ धोती जोड़ा या पजामे २	१।।)	कुल जोड़	४।)

कपड़ा खादी का होने से टिकाऊ होता था अतएव फ़ी आदमी पीछे ६) या १०) रुपये का कपड़ा एक वर्ष के लिये पर्याप्त होता था। कभी कभी इससे सस्ता भी काम बन आता था। तभी तो यवन काल में सैनिकों का वेतन चार या पाँच रुपये मासिक होता था और उसमें वे अपना और अपने बाल-बच्चों का बखूबी पेट भर कर सुख-चैन से अपने दिन काटते

थे। उस समय के शासक कपड़ों पर कपड़े अकारण ही नहीं लादते थे अतएव प्रजा भी उन्हीं के अनुसार थोड़े कपड़े पहन कर अपना जीवन सुखपूर्वक विताती थी।

यवन काल में भी रेशमी और ऊनी बढ़िया वस्त्र मिलते थे इसका प्रमाण इतिहासों में खूब मिलता है। कपास, रेशम, ऊन, सन, तीसी वगैरः हमारे देश में बाहुल्यता से प्राप्त हो जाते थे। उन दिनों भारत से बढ़ कर कपास किसी देश में नहीं होता था। सामग्री उत्तम मिलती थी; कपड़ा बुननेवाले लोग भी कुशाग्रबुद्धि होते थे। देखिये एक महाशय लिखते हैं—

"It appears that nature herself has bestowed the gift of excellence in art and manufactures on the patient skilful Hindu. The other nations appear to be comstitutionally unfit to riveal the Hindus in the finer operations of the loom, as well as in other arts that depend upon the delicacy of sence."

"प्रकृति ने ही हिन्दवासियों को कलाकौशल और आविष्कार करने की शक्ति प्रदान की है। दूसरा कोई भी राष्ट्र इस विषय में उसकी मुख़ालिफ़त करने योग्य नहीं है।" सारांश यह है कि इस भारतवर्ष को परमात्मा ने प्रत्येक बात में—कार्य में श्रेष्ठ बनाया है। यहाँ तक कि गंगा जैसी नदी और हिमालय जैसा पर्वत इस भूतल पर किसी भी अन्य देश में नहीं है। फिर भला यहाँ के निवासियों का कलाकौशल में सर्वोत्कृष्ट सिद्ध होना कोई बड़ी बात है ? जैसी पूर्व काल में हाथ से कते सूत और हाथ से बुनी हुई खादी में भारतवर्ष उन्नति की सीमा को लाँघ गया था वैसी खादी इस समय में कलें भी नहीं बना सकी हैं !!!

अंगरेज़-काल।

पहला अध्याय।

यवनकाल के बाद अंगरेज़ काल का नम्बर आता है, क्योंकि यवनों के बाद हमारे देश पर अंग्रेज़ों का ही आधिपत्य स्थापित हुआ है। यह हम पहिले कह आये हैं कि खादी का राज्य से घनिष्ठ संबंध है। इसीलिए हमने शासकों के नाम से ही अपने इतिहास के काल बनाये हैं। जिस प्रकार यवनों ने आक्रमण करके भारत पर अपना अधिकार जमाया था, उस तरह अंगरेज़ों ने नहीं किया। इनकी नीति, पालिसी ही विचित्र रही है।

जिस तरह उन्होंने भारत पर अपना पंजा जमाया वह लोगों से छिपा नहीं है। इस विषय में जिसे अधिक ज्ञान प्राप्त करना हो वह किसी बड़े इतिहास को पढ़ें। हमारा विषय यह नहीं है तो भी वस्त्र का शासक से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण हमें थोड़ा बहुत परिचय के रूप में लिखना पड़ा। पहले पहल जो अंगरेज़ भारत में आया था, उसका नाम मि० थामस स्टीवन्स (Thomas Stevens) था। भारत में उसके आने का उद्देश एक मात्र व्यापार था। बहुत सी चीज़ें जो ठंडे मुल्कों में पैदा नहीं होतीं वे अपने देश में ले जाना और अपने देश की चीज़ें लाकर भारत में बेचना यह उन लोगों का काम था।

"They came to buy things which are not

found in Europe. Pepper, rice, cotton, indigo, ginger, spices, cocoanuts and the poppy and sugarcane from which opium and sugar are made, do not grow in cold coutries like England; and in old times, beautiful muslins and cottons and silk cloths weres made in India better than England. In the old time goods were carried from India to Europe over the land on camels, or mules." "वे भारत में ऐसी वस्तुएँ ख़रीदने की इच्छा से आये जो उनके देश योरोप में अप्राप्य थीं, जैसे, मिर्चें, चाँवल, रुई, नील, अदरख, मसाले, नारियल, ख़शख़श, और गन्ने जिनसे कि अफ़ीम और शक्कर बनती है। ये वस्तुएँ इंगलैण्ड जैसे शीतप्रधान देशों में नहीं होतीं। वे भारतीय ख़ूबसूरत सूती और रेशमीवस्त्र मसलिन वग़ैरः भी ख़रीद ले जाते थे जो कि उन दिनों हिन्दुस्तान में इंगलैण्ड से अच्छे बनते थे। वे अपना माल असवाब स्थलमार्ग द्वारा ऊँटों और खच्चरों पर लाद कर अपने देश को ले जाते थे।"

इससे दो बातें सिद्ध होती हैं (१) यह कि अंग्रेज़ों ने अपना पैर भारत में केवल व्यापार के लिए रखा था अर्थात् उन्होंने व्यापारी रूप में भारत में अपना पदार्पण किया। सन् १६०० ईस्वी में लगभग १०० सौदागर भारत में आये और उन्होंने अपनी फ़ेक्टरी सूरत में स्थापित की। उन दिनों अकबर भारत पर शासन कर रहा था। इन अंगरेज़ सौदागरों ने अपने माल की रक्षा के लिये एक मज़बूत दीवार अपनी फेक्टरी के चारों ओर बनवा कर उस पर बड़ी बड़ी बन्दूकें रख दीं। इन दिनों इस कम्पनी का नाम "इंग्लिश ईस्टइण्डिया कम्पनी" था।

इसे व्यापार में खूब सफलता मिली। लगभग सौ वर्षों तक इसका व्यापार खूब चलता रहा। तब छोटी मोटी सब कम्पनियाँ मिल कर एक बड़ी कम्पनी हो गई जिसका नाम लगभग सन् १७०० ई० के "यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी" रखा गया।

अब देखिये अँगुली पकड़ते पकड़ते पहुँचा कैसे पकड़ा। यह बात आपको आगे मालूम पड़ जावेगी। यहाँ हमें अंग्रेज़ी भाषा के उद्धृतांश में दूसरी बात यह दिखानी है कि उन दिनों हमारे देश की खादी सारी पृथ्वी के देशवासियों के नंगे बदनों को ढँक कर उनकी लज्जा बचाती थी। आधी दुनिया जिस प्रकार आज भारत के अन्न से अपनी जठर-ज्वाला को शान्त करती है: उसी तरह आज से ढाई सौ या तीन सौ वर्ष पूर्व भारत आधी दुनिया को अपने वस्त्रों से ढाँकता था और स्वयं सुखी था। इसके कई कारण हैं जिन्हें यहाँ लिखना विषयान्तर में पड़कर पुस्तक के आकार को व्यर्थ ही बढ़ाना है। अर्थशास्त्र के ज्ञाता पाठक इस प्रश्न को सहज ही में हल कर सकते हैं। इसको हम आगे चल कर साफ़ करेंगे जिसे समझदार पाठक विचार पूर्वक पढ़कर सम्भवतः समझ सकेंगे।

बम्बई आदि शहरों पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा

कलकत्ता बम्बई और मद्रास पर अंग्रेज़ों ने अपना अधिकार कैसे किया? यह यहाँ बता देना ज़रूरी है। पहले पहल अंग्रेज़ों का व्यापार सूरत में होता था। उन दिनों पोर्चुगीज़ लोगों का अधिकार बम्बई पर था। यह बम्बई पुर्तगाल नरेश ने अपनी पुत्री के दहेज में इंगलैण्ड के राजा द्वितीय चार्ल्स को दे दी। चार्ल्स ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बम्बई १५०) रु० साल पर दे दी। बम्बई पाते ही कम्पनी ने अपना व्यापार

सूरत से हटा कर बम्बई में ला जमाया। यह तो हुआ बम्बई पाने का कारण। अब कलकत्ता कैसे मिला? यह भी जान लेना ठीक है। बादशाह शाहजहाँ की प्रियपुत्री चिराग़ से इतनी जल गई कि उसे सूरत जाकर एक अंग्रेज़ डाकृर का इलाज कराना पड़ा। इस डाकृर महाशय का नाम (Gabriel Boghton) जिब्राइल बाटन था। डाकृर ने उसे आराम कर दिया। तब बादशाह ने इच्छित पुरस्कार माँगने को कहा। उस स्वदेशभक्त डाकृर ने कहा कि अंग्रेज़ों को बंगाल में व्यापार करने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। बादशाह ने स्वीकार कर लिया। तब इन्होंने हुगली पर अपनी एक कम्पनी स्थापित कर दी। इसके बाद सन् १६४० ईसवी में इन्होंने मद्रास भी ख़रीद लिया।

शाहजहाँ के ज़माने में इनका समय ख़ूब सुख-चैन से कटा किन्तु ज्योंहीं औरंगज़ेब ने राज्यभार अपने हाथ में लिया त्योंही उसने इनसे मुसलमानी जज़िया नामक कर माँगा। इन अंग्रेज़ व्यापारियों को यह अनुचित मालूम हुआ। वे अपने बोरिये-बिस्तर बाँध कर चल पड़े; यह देख कर औरंगज़ेब ने उन्हें वापस बुला लिया और किसी प्रकार का कष्ट न देने का उनसे वादा कर लिया। ये लौट आये, तब इन्होंने तीन गाँव हुगली के पास ख़रीद लिये। इनमें से एक का नाम कालीघाट था, जिसे अब कलकत्ता कहते हैं। यहाँ पर इन लोगों ने सन् १६६० में एक क़िला बना लिया। इन दिनों यहाँ फ्रेंच और डच लोगों का व्यापार भी होता था!

सन् १७४४ ई० में फ्रेंचों और अंग्रेज़ों में युद्ध की आग भड़की। वह यहाँ तक बढ़ी कि भारत के फ्रेंच व्यापारियों ने अंग्रेज़ों पर आक्रमण किया और मद्रास पर अपना अधिकार

जमा लिया। फिर क्या था, विलायत से अंग्रेज़ों के सिपाही भी आ गये जिससे फ़रासीसियों को मुँह की खाकर चुप हो जाना पड़ा। यूरोप में फ्रेंचों और अंग्रेज़ों में सन्धि हो जाने के कारण युद्ध बन्द हो गया। भारत में भी इनका झगड़ा ख़तम हो गया। मद्रास अंग्रेज़ों को मिल गया।

यह सन्धि चिरस्थायी नहीं रही। फिर सन् १७५७ में आग भड़की और युद्ध हुआ। यह पलासी युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें अंग्रेज़ों की जीत हुई और कलकत्ते के आस-पास का इलाक़ा जो चौबीस परगना कहलाता है उनके हाथ आ गया। इसका स्वामी लार्ड क्लाइव था। बस यहीं से अंग्रेज़ों के शासन का श्रीगणेश होता है। इसके बाद भी थोड़ी बहुत ख़ून-ख़राबी हुई—किन्तु धीरे धीरे इन्होंने सारे भारत पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

यह काल व्यापार के परिवर्त्तन का युग कहा जा सकता है। क्योंकि व्यापारी शासकों का दौर-दौरा सारे देश पर था। इनकी कूटनीति, और गहिरी पालिसी का पता लगा लेना ज़रा टेढ़ी बात है। तो भी हम पाठकों को थोड़ा बहुत समझाने का प्रयत्न करेंगे। व्यापार में से यदि वस्त्र सामग्री निकाल ली जावे तो व्यापार का आधा हिस्सा एक तरफ़ हो जाता है। सब से पहले इनकी दृष्टि भारतीय वस्त्र व्यापार की ओर गई और इन्होंने जैसे तैसे उसे अपनी मुट्ठी में लेना चाहा। इतने में इनका प्रभुत्व भारत पर स्थापित हो गया। फिर क्या कहना था। गुप्त रीति से इन्होंने भारतीय वस्त्र-कला को समूल नष्ट करके अपने देश में इस कला को उन्नत करने का उद्योग आरम्भ कर दिया। जहाँ हमारे देश की बढ़िया खादी बनती थी उस

ढ़ाके में ही इनकी कम्पनी तो थी ही किन्तु उस पर आधिपत्य होते ही इन्होंने चर्खे और सूत पर ऐसी आपत्तियाँ पैदा कर दीं कि धीरे धीरे वहाँ कुछ भी बाकी नहीं रहा। वह ढ़ाका जो सचमुच असंख्य मनुष्यों के शरीर ढाँका करता था और जहाँ के बने वस्त्रों को पहिन कर मनुष्य, समाज में अपने को बड़ी प्रतिष्ठायुक्त समझता था वही ढ़ाँका अपना शरीर ढ़ाँकने को भी परमुखापेक्षी बन रहा है। हा शोक !

हमारी खादी की पैदा खेत से है। खेत में कपास बोया जाता है और उसी का वस्त्र तैयार होता है। कपास कई तरह का होता है। एक कपास ऐसा होता है जिसका धागा बारीक़ और लम्बा निकलता है। इसे अंग्रेज़ी में Long Stapled कहते हैं। इसकी खेती पहले समय में बहुतायत से होती थी। अब देशव्यापी दरिद्रता के कारण यह उठ सी गई है—इसकी तरफ़ किसी का भी ध्यान नहीं है । इसी कपास से विश्वविख्यात ढ़ाके की मलमल बनती थी—आध सेर रूई से २५० मील लम्बा सूत कत सकता था । अब खेती की इतनी दुर्दशा हो चुकी है कि ४० नम्बर का सूत निकालने के लिए रुई विदेशों से आती है ? पहले हमारे देश में ऐसी बढ़िया रुई होती थी कि ४०० नम्बर तक का सूत आसानी से चरखे पर काता जा सकता था जिसे आज मशीनें भी कातने में असमर्थ हैं ? ज़रा निम्नकोष्ठक देखिये। इससे भारतीय कपास की उपज का पता लग जावेगा।

सन्	एकड़ भूमि में बोई गई	उपज रूई की गाँठें
१९०४-५	१३०१७०९२	३९४३६०२
१९०७-८	१३९०९२६९	३७८२४०१
१९१२-१३	१४१३८४९७	४५६३०००
१९१६-१७	२१२१२०००	४२७३०००

स्मरण रहे एक गाँठ का वज़न चार सौ पाउण्ड है। भारत में कपास पैदा होती है उसका आधे से एक तिहाई तक बाहर चला जाता है। बचा-खुचा भारत के काम आता है। उसमें से कुछ हिस्सा तो योंही सीधा काम में ले लिया जाता है। जो बचता है वह सूत कातने और कपड़ा बुनने के काम में लाया जाता है। सूत और कपड़ा भी बहुत सा बाहर चला जाता है जिसका हाल आपको आगे मालूम होगा। हमारे देश की कितनी कच्ची रूई विदेशों में चली जाती है उसका विवरण कोष्ठक हम नीचे देते हैं।

सन्	कच्ची रूई वज़न हं०	क़ीमत पाउण्ड
१९०४-५	५६५७७४३	११६२३१२५
१९०७-८	८५६२०१४	१७१३५०१३
१९१३-१४	१०६२६३१२	२७३६१६५५
१९१७-१८	७३०८०००	२८४३८२६६

स्मरण रखिये ऊपर दिया हुआ वज़न हज़ार पौंड है। अब ज़रा यहाँ यह भी देख लीजिये कि भारत में बाहर से कितनी रुई आती है—

नाम देश		सन् १९११-१२	१९१२-१३
युनाइटेड किंगडम हज़ार पाउण्ड		९७४	६७०
अमेरिका संयुक्तराज्य	"	२६७	६४७
जर्मनी	"	५६	६२
मिसर	"	२७	१४
अन्य देश	"	६७	७०
कुल जोड़		१३९१	१४८२

आपने ऊपर दिये हुए कोष्ठक बखूबी देख लिए हैं। अब आपको इस विषय में अधिक साफ़ दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। यद्यपि हमारा भारतवर्ष गर्म देश है और साथ ही यहाँ के लोग बिलकुल दरिद्री बन चुके हैं तथापि एक वर्ष में वस्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री के आने जाने का मूल्य औसत से कोई १७५ करोड़ रुपयों के लगभग होता है। इसके अलावा करोड़ों रुपयों की सामग्री ऐसी भी है जिसका पूरा पूरा हिसाब मिलना कठिन है।

दूसरा अध्याय ।

भारत दरिद्र होने लगा ।
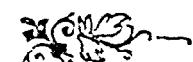
आपको सुनकर आश्चर्य सागर में डूबना पड़ेगा कि जिस अमेरिका में आज अरबों रुपये की लागत का रूई का माल बनता है उसमें आज से ४०० वर्ष पहिले रूई का कुछ भी रोज़गार नहीं था। यहाँ तक कि उन्हें रूई का पता तक भी नहीं था। हमारे वैदिककाल के देखने से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि हमारी वस्त्रकला कितनी प्राचीन है। भारतीय खादी से विदेशों के बाज़ार डटे रहते थे। जब योरोप के लोग व्यापारी बनकर यहाँ आए तब उन्होंने वस्त्र बुनने की कला सीखी और इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी में इंगलैण्ड ने थोड़ा बहुत कपड़ा बुनना शुरू किया। जिस विदेशीय मेञ्चेस्टर और लङ्केशायर ने आज भारत को कपड़ों से भर दिया वहाँ १७वीं शताब्दी के पूर्व कुछ भी नहीं था। धीरे धीरे वहाँ मशीनों का आविष्कार हुआ और उनसे कपड़े बुने जाने लगे। उधर १८वीं शताब्दी में अमेरिका ने रूई की खेती आरंभ कर दी। इधर भारत के व्यापारी शासकों ने हमारे देश की खादी-वस्त्रों के व्यापार में कई रुकावटें खड़ी करके उसका गला दबोचना

करोड़ पाउण्ड वजन का कपड़ा बुना गया था। मिलों ने चरखे और करघों की क्षति थी और भी कर दी। यद्यपि देश में अब भी चरखे और करघे मौजूद हैं और चलते भी हैं तथापि उनसे काम करने वालों को कुछ भी लाभ नहीं है। बैठे बैठे उनसे जी बहलाने के रूप में थोड़ा बहुत काम कर लिया करते थे। वे लोग किसी तरह अपने दुःखमय जीवन को बिता रहे थे। इन दिनों इन सब की उन्नति की चर्चा भारत में हो रही है।

बहुत से मिल भी देश को अच्छी तरह वस्त्र नहीं दे सके। करोड़ों का माल प्रतिवर्ष देश में विलायत से आ ही रहा है। इन मिलों से देश को जो हानि हुई है वह ध्यान देने योग्य है। (१) देश का बहुत सा रुपया मशीनों के बदले में विदेशों को देना पड़ा और टूटने फूटने पर फिर भी मशीनें विदेशों से ही मँगानी पड़ती हैं। मशीनें टूट जाने पर लोहे के भाव में भी कोई नहीं पूछता (२) जमीन बहुत सी घेर ली है जिससे खेती में हानि हुई। (३) एंजिनों में कोयला जलाने के लिए वन के वन काटे गये जिससे वृष्टि कम होने लगी (४) पत्थर का कोयला भी जलाया जाता है जिसका धुआँ तन्दुरुस्ती को धूल में मिला रहा है (५) उसमें काम करने वालों का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहने पाता अतएव भारतीय अल्पायु होने लगे (७) उसमें बन कर आया हुआ वस्त्र चर्बी वगैरः के लगे होने के कारण पहिनने वाले के स्वास्थ्य को गुप्त रीति से धीरे २ हानि पहुँचाने लगा (८) कम मजबूत होने के कारण लोगों का वस्त्र खर्च बढ़ गया। इत्यादि बड़ी बड़ी बातें ही दिखाई हैं। ऐसी छोटी छोटी और भी कई हैं जिनका उल्लेख करना व्यर्थ ही पुस्तक के आकार को बढ़ाना है। हमारे चरखे और देशी करघों में यह एक भी दोष नहीं है जिन्हें पाठक खुद विचार सकते हैं।—अब हम

नीचे मिलों की उन्नति का नक्शा देते हैं। जिसके देखने से बहुत कुछ ज्ञान हो जायगा।

पाँच वर्षों की औसत	मिलोंकी संख्या जो काम कर रही थीं	पूजी (लाख रुपये)	काम करने वाले (हज़ार)	करघे (हज़ार)	तकुवे (हज़ार)
१८७६-८० से १८८३-८४ तक	६२	६५७·६	५१·०	१४·५	१६१०·६
१८८४-८५ से १८८८-८९ तक	९३	८८७·९	७५·७	१८·२	२२९६·८
१८८९-९० से १८९३-९४ तक	१२७	११६१·७	११६·१	२५·३	३२६३·८
१८९४-९५ से १८९८-९९ तक	१५६	१४१९·५	१५०·०	३६·६	४०४६·१
१८९९-०० से १९०३-४ तक	१९५	१६८७·९	१७१·६	५२·०	५०००·९
१९०४-५ से १९०८-९ तक	२१८	१८७८·७	२१६·४	६०·०	५५४९·१
१९०९-१० से १९१३-१४ तक	२५७	२२४३·३	२४३·८	८८·१	६४०६·४
१९१५-१६	१६७	२२९१·५	२९२·२	१०८·४	६६७५·७
१९१७-१८	२६९	२४६५·०	२८४·०	११४·८	६६१४·२

इन २६६ मिलों से १७३ बम्बई हाते में १४ बंगाल में, १६ युक्तप्रान्त में, १३ मद्रास में, ६ मध्यप्रदेश और बरार में ४ पंजाब में, ४ फ्रेंच भारत में और बाकी देशी राज्यों में हैं। इन मिलों में जो वस्त्र बनते हैं वे स्वदेशी ही माने जाते हैं किन्तु यह भूल है। क्योंकि बहुत सी मिलें सूत विदेशों से मँगा कर कपड़ा तय्यार करती हैं और बहुत सी रूई विदेशों से मँगाकर कपड़ा बनाती हैं। हमारी भारतीय मिलें मोटा सूत निकालती हैं। अब कुछ बम्बई की मिलें विदेश से रूई मंगाकर बारीक सूत निकालने का उद्योग कर रही हैं। जो लोग मिल के वस्त्रों को शुद्ध स्वदेशी समझते हैं उन्हें नीचे का कोष्ठक ध्यानपूर्वक देखना चाहिए—

	सन् १९१४—ई०		सन् १९१८—१९ ई०	
सूत नं०—	भारत में बना मिलियन पाउण्ड	बाहर से आया मिलियन पाउण्ड	भारत में बना मिलियन पाउण्ड	बाहर से आया मिलियन पाउण्ड
१से२५तक	५६१	१	५३८	८
२६से४०तक	५८	२६	७२	१६
४०से ऊपर	२	·७	४·८	६·७
बेतफसील	१	६	१	४

इस कोष्ठक से मोटे बारीक सूत का विवरण हो जाता है।

जितनी भी महीन धोतियाँ हमारे भारतवासी खरीदते हैं वे सब विलायती सूत की बनी हुई होती हैं। बात सिर्फ इतनी ही है कि वे भारत में विदेशी ही मशीनों द्वारा बनकर स्वदेशी बन बैठतीं हैं। मिलों के स्वामी उन पर "स्वदेशी माल" "देश माँ बनेलो माल" इत्यादि लिखकर स्वदेशी व्रत वाले मनुष्यों को भी धोके में डाल देते हैं। भारतवासियों को बहुत सोच समझ कर अपने व्रत को पूर्ण करना चाहिए। सन् १९१७-१८ में ६६०, ५७६००० पाउण्ड (वजन) सूत भारतीय मिलों ने काता और इसी साल १९४०००००० पाउण्ड (वजन) सूत बाहर से भारत में आया। योरोपीय महासमर के समय में विदेशी सूत भारत में अधिकता से नहीं आ सका, इस कारण देशी मिलों ने अपना कपड़ा महँगा कर दिया। तब से कपड़े का बाजार बराबर तेज ही बना हुआ है—इससे मिलों को बहुत लाभ है। मिलवालों को भले ही सुख रहा हो; किन्तु बेचारे दीन भारतवासियों के दुःख का तो कुछ ठिकाना ही नहीं रहा। लज्जानिवारण के लिए भी वस्त्र मिलना दुर्लभ होगया—बहिनों और माताओं को घर से बाहर कुएँ पर पानी लाने जाने के लिए लज्जा रोकने लगी। क्योंकि कपड़े का दाम दुगना तक पहुँच गया। कहते हृदय को आन्तरिक वेदना होती है कि कपड़ा न मिलने के कारण कई बहिनों ने तो लाज के मारे आत्महत्या तक भी कर डाली! सब कुछ हुआ लेकिन मिल के मालिकों ने अपने कपड़े का भाव नहीं घटाया—हद से ज्यादः लाभ उठाते हुए भी उन्हें दीन भारत पर तनिक भी दया नहीं आई।

जिन दिनों योरोप में युद्ध हो रहा था उन दिनों विदेशों से हमारे देश में सूत कम आया सही, लेकिन जापान ने हमारे देश में कपड़ा और सूत भर दिया। वहाँ के महीन और रेशमी की

तरह चमकदार (mercirised) सूत की यहाँ बहुत खपत होने लगी। जापान ने १८८८–८६ में २३ मिलियन पाउण्ड (वज़न) सूत भारत से खरीदा था। सन् १८६६—०० में एक लाख अस्सी हजार पाउण्ड ही खरीदा। आज वह इतना सँभल गया है कि अब एक पाई का सूत नहीं खरीदता। उल्टा उसने सन् १६१६–१७ में कोई ३० लाख पाउण्ड तथा सन् १६१७–१८ में ३४½ लाख पाउण्ड की कीमत का सूत और सूती कपड़ा भारत में भेज दिया। इसे कहते हैं उन्नति, विद्यावल और स्वदेश प्रेम!

हमारी देशी मिलें सिर्फ मोटे कपड़े ही तय्यार करती हैं, बारीक वस्त्रों के लिये तो फिर भी विदेशों का ही मुहँ ताकना पड़ता है। देखिये सन् १६१३–१४ में भारतीय मिलों ने ११६·४ करोड़ गज़ मोटे कपड़े तय्यार किये थे। इसी साल विलायत से ३१५·६ करोड़ गज़ बारीक कपड़ा भारत में आया था। इस से यह स्पष्ट है कि मोटे कपड़ों के अतिरिक्त देश को महीन वस्त्रों की भी बहुत आवश्यकता है। हमारी बहिनें और माताएँ प्रायः मोटा वस्त्र पसन्द नहीं करतीं अतएव उनके लिये ही बहुत सा बारीक कपड़ा विदेश से स्वदेश में आता है! सुकुमारता स्त्रियों के लिए स्वाभाविक है अतएव वे महीन कपड़ा ही पसन्द करती हैं। मोटे वस्त्र के लिए उन्हें विवश करना धींगाधींगी है। बहुत से ज़नानामिजाज़ के आदमी भी महीन वस्त्र को ही धारण करते हैं। अतएत भारत में महीन कपड़ों के बुनने का प्रबन्ध भी जरूरी है।

तीसरा अध्याय ।

भारत में विदेशी माल की आमद ।

दुनिया भर के सभी देशों में कपड़े का सबसे बड़ा बाज़ार भारतवर्ष में ही है और इस बाज़ार का अधिकारी विशेष कर मैंचेस्टर तथा लंकेशायर ही है। युद्ध के पहिले कोरे कपड़े ९९ प्रतिशत, धुले हुए ९८ प्रतिशत और रंगीन ९२ प्रतिशत मैंचेस्टर तथा लंकेशायर से आते थे। केवल रंगीन वस्त्रों में इटालियन, डच और जर्मनी की छींटों की थोड़ी बहुत आमदनी होती थी। जापान और अमेरिका का व्यापार केवल नाममात्र के लिए ही था। यही कारण है कि लंकेशायर की तेजी मंदी का फौरन ही भारत के बाज़ार में प्रभाव पड़ता है। युद्ध छिड़ जाने से लंकेशायर आदि शहरों के मज़दूर सेना में भर्ती होकर युद्ध में चले गये, अतएव उनका व्यवसाय गड़बड़ा गया। माल महँगा पड़ने लगा।

भारत के बाज़ार में कपड़े की माँग देखकर जापान और अमेरिका ने उसकी आवश्यकता पूरी करने का निश्चय किया। अमेरिका कोरा ड्रिल और ज़ीन भेजने लगा। जापान ने कोरा लाँगक्लाथ, मार्किन, चादर, ड्रिल और जीन भेजा। धुले हुए कपड़ों में जापानी ज़ीन और ड्रिल बहुतायत से आये। रंगीन कपड़ों में जापानी चारखाने, ड्रिल, ज़ीन और कमीज के कपड़े आये। जापान से रंगीन कपड़ों की आमद बेतरह बढ़ रही है। जहाँ जापान ने सन् १६१५-१६ में ३३४६००० गज रंगीन कपड़ा भारत को भेजा वहाँ सन् १६१६-१७ में २१, ६३६,००० गज रंगीन वस्त्र भेजा। एक ही साल में वह छः गुना बढ़ गया। जापान का इस प्रकार भारत में वस्त्र व्यवसाय बढ़ना अत्यंत हानिप्रद है। जिस प्रकार सुरसा राक्षसी की तरह जापान बढ़ रहा है उसीके अनुसार भारत को भी हनुमान की तरह बढ़-कर उसका अन्त कर देना चाहिए। युद्ध काल में जब कि भारत में वस्त्रों की कमी हुई तब विदेशों ने इसे वस्त्र दिया, यह कितने खेद की बात है। ऐसे समय में भी भारत नहीं चेता तो फिर कब चेतेगा। शायद इसका कारण देश की बढ़ती हुई दरिद्रता हो!

देखिये, धीरे धीरे जापान भारत को किस तरह वस्त्र व्यव-साय द्वारा मुट्ठी में लेता जा रहा है! इस बात का इस कोष्ठक से पता लगेगा—

देश	सन् १९१२–१३	सन् १३–१४	सन् १४–१५	सन् १५–१६	सन् १६–१७	सन् १७–१८
अमेरीका पाउण्ड	२६६०००	१७३०००	१७३०००	२५७०००	२०४०००	२३००००
		जा	पा	न		
सूती मोज़े गंजी	४२५०००	५५६०००	४४४०००	३७६०००	८५०००	६११०००
सूती थान पाउण्ड	७३०००	११८०००	१९२०००	४६१०००	१६२१०००	२१७९०००
सूत	३५०००	९३०००	८२०००	५२०००	३५४०००	५५३०००
अन्य सूती माल	१६०००	३६०००	१८०००	६९०००	२२७०००	१०६०००

भारत में इस कपड़े के व्यापार से जापान में बहुत से कपड़े के कारखाने नये खुल गये। जहाँ सन् १५।१६ में सिर्फ ७॥ लाख पाउण्ड कीमत का कपड़ा जापान से भारत में आया।

था वहाँ १६–१७ में ३४॥ लाख पाउण्ड का वस्त्र आया !! अब यह देखिये—नीचे का कोष्ठक आपको भारतवर्ष में हर साल आने वाले सूती विदेशी कपड़े का पूरा पूरा हाल बता रहा है—

सन्	१९१० से १४ तक	१५ से १६	१६ से १७	१७ से १९१८ तक
सूत रुपये	३७७१८०००	३६७७००००	४०४८६०००	४२६५२०००
सूती थान कोरे "	२१०८५६०००	१८०८६१०००	१६८६६८०००	१८४३२३०००
" धोया "	११२०३३०००	१०६८३८०००	१२७६३५०००	१४२०४८०००
रंगी०, छपे "	१३१५४७०००	८५५६६०००	१५०८८४०००	१६१४५८०००
कटे हुए थान "		४३६४०००	८६४७०००	६४२१००००
कुल थान "	४५४४३६०००	३७७६३००००	४५६४६४०००	४६७२५००००
गंजी, मोजा, "	६२८६०००	६४०००००	१४१३४०००	१०२५२०००
रूमाल, शाल सूती "	५२२००००	१४६३०००	१७८८०००	१५६००००
सूत (धागे) "	३६१००००	४३७६०००	५५३२०००	६१८६०००
अन्य "	११५३३०००	६०८६०००	१२२३६०००	८७६३०००
कुल जोड़	५२१८०३००००	४३२७५५०००	५३०६४६०००	५६७०२६०००

जापान से आये हुए सूती माल के इस कोष्ठक को देखकर आँखें खुल जाती हैं। हमारे बहुत से अनजान भारतवासियों ने जापान के वस्त्र को खूब अपनाया। यद्यपि जापान का माल चलने में किसी काम का नहीं होता था तथापि लोग उसकी सफाई पर लट्टू होकर उसे खूब खरीदते थे। इससे बड़ी ही हानि हुई—हमारे देश का बहुत सा द्रव्य व्यर्थ ही जापान में जा पहुँचा। हमारे कई देशभक्त स्वदेश प्रेमी बड़ी भारी भूल कर बैठते थे। उन्होंने जापानी कपड़े को एक तरह से स्वदेशी सा समझ लिया था। वे कहते थे कि बाय-काट तो हमें इंग्लैण्ड के माल का करना है; जापान तो हमारा ही है। यही भ्रम कपड़े के व्यापारियों ने भी लोगों में पैदा कर दिया था। जो लोग उनसे स्वदेशी कपड़े माँगते उनके आगे वे जापानी कपड़े का थान पटक कर कहते कि "यह क्या इंग्लैण्ड़ का है ?" जब लोग कहते कि यह तो जापानी है तो बजाज कहते—"जापान भी तो स्वदेशी ही है।" ग्राहक को कुछ तो बजाज बहलाते और कुछ जापान का सुन्दर कपड़ा उनके मन को अपनी ओर खींच लेता, बस फिर क्या था। ग्राहक अपने व्रत को शिथिल करके जापानी माल खूब खरीदने लगे। वास्तव में स्वदेशी का अर्थ यह है कि जो भारत का ही हो।

इंग्लैंड के माल का बहिष्कार करें या विदेशी का।

केवल इंग्लैण्ड के व्यापार का बायकाट करना, शत्रुता है, द्वेष है और कमीनापन है! यह ओछे और उच्छृंखल विचार हैं—ऐसा करना निन्द्य है, और ऐसा करनेवाला घृणा की दृष्टि से देखा जाने योग्य है। हमारा स्वदेशी आन्दोलन किसी को हानि पहुँचाने के लिए नहीं है बल्कि अपनी रक्षा के लिए है। हमें

देशभक्ति के लिए—अपनी आत्मरक्षा के लिए अपनी धर्मरक्षा के लिए और उन्नति के लिए विदेशी माल का बहिष्कार करना है फिर वह भारत के अतिरिक्त किसी भी देश का क्यों न हो। जापान का माल भारतीयों के लिए कदापि स्वदेशी नहीं हो सकता। स्वदेशी तो सिर्फ़ वही हो सकता है जो भारतीय सारी सामग्रियों से बना हो। अब लोगों को धोके में नहीं आना चाहिए। यह जापान भी भारत का धन हड़पने के लिए एक नई जोंक हो गया है।

इन दिनों भारत से बेचारी खादी का नाम उठ सा गया। थोड़े बहुत जुलाहे कपड़ा बुनते थे। किन्तु सूत वही मिलों का कता लेने लगे। इससे इतना ही लाभ था कि गरीब जोलाहे १०–१५ रुपया महीने की मजदूरी कर लें। ऐसी खादी को लोग बड़ी ही पवित्र और शुद्ध खादी समझ कर पहिनते थे। इस स्वदेशी शब्द की ऐसी दुर्दशा हुई कि कौन सा कपड़ा स्वदेशी समझा जावे यह बात जान लेना ज़रा कठिन सा हो गया। कई बार देखा गया है कि खास विलायती सूत से जुलाहों के हाथों द्वारा बना हुआ कपड़ा भी स्वदेशी माना जाता है। जितना भी महीन वस्त्र इन दिनों प्राप्त होता है वह सब बिना सोचे समझे विदेशी माना जा सकता है क्योंकि अभी महीन सूत भारत के मिलों में नहीं निकलता है। खुद मिलें ही विदेशों से बारीक सूत मँगाकर उनका कपड़ा तैय्यार करती हैं। कुछ दिनों से बम्बई की कुछ मिलें बारीक सूत निकालने का प्रयत्न करने लगी हैं किन्तु कपास (रूई) विलायत से ही आती है। बिना विलायती रूई के बारीक सूत नहीं निकल सकता। अतएव जब तक लम्बा सूत निकालनेवाली कपास भारत में पैदा न हो सकेगी तब तक महीन वस्त्रों को कदापि शुद्ध स्वदेशी नहीं माना जा सकता।

इसका यह मतलब नहीं है कि महीन वस्त्र पहिननेवालों के लिए भारत महीन वस्त्र तय्यार करने में असमर्थ है। नहीं, इसमें वह सामर्थ्य है जो बीसवीं सदी की मशीनों में भी नहीं है।

डाक्टर टेलर सा० ने सन् १८४६ में एक खादी का थान देखा था जो बीस गज लंबा और ४५ इंच चौड़ा था लेकिन उसका वज़न सिर्फ ७ छटांक ही था। इन्हीं महाशय ने ढ़ाके में एक ऐसा बारीक सूत देखा था जो लम्बाई में १३४९ गज़ था परन्तु वजन में केवल २२ ग्रेन था। यह सूत आजकल के हिसाब से ५२४ नम्बर का होता है! कलों द्वारा अभी तक ऐसा बारीक सूत नहीं निकल सका है जैसा हमारे घर के मामूली चर्खों से किसी समय बाहुल्यता से निकलता था। हमारे पुराने समय के खादी के वस्त्रों में यह एक विशेषता थी कि वे मिल के बने कपड़ों की तरह धुलने पर कमज़ोर नहीं हो जाते थे और न सूत पानी लगने से फैलता ही था। ढ़ाके की खादी (मलमल) धोने से सिकुड़ती थी और अधिक मज़बूत हो जाती थी।

सत्रहवीं शताब्दि में भी ईस्ट इंडिया कम्पनी, और न्यू कंपनियाँ लाखों रुपयों की बारीक और मोटी खादी भारत से योरोप को ले जाया करते थे। उनकी सफाई सुन्दरता और बारीकी देखकर वे लोग दाँतों तले अँगुली दबाते थे। उन्हें अपने देश की वस्तुओं से प्रेम नहीं होता था—वे अपने देश के वस्त्रों को नापसन्द करते थे। देखिए सर टामस रो भारतीय माल की प्रशंसा में कहते हैं—

"हिन्दुस्तानी माल विलायती माल की बनिस्बत कई गुना अच्छा होता है। एक हिन्दुस्तानी शाल को हम सात

वर्ष से काम में ला रहे हैं किन्तु वह अभी तक ज्यों का त्यों है। सच बात तो यह है कि योरोपियन शाल मुफ़ में मिलने पर भी हम उसे अपने काम में नहीं लाना चाहते।"

जिस भारत के वस्त्रों को देखकर विदेशी लोग अचंभा करते थे उसके व्यापार से अन्य देशों का वस्त्र व्यवसाय पैंदे बैठने लगा। यहाँ से सूती, रेशमी, सनी और ऊनी वस्त्रों ने यूरोप में पहुँच कर वहाँ के वस्त्र व्यापार को बहुत ही धक्का पहुँचाया। अपना सत्यानाश होता देखकर लोगों ने सरकार के कानों तक अपनी दुःख कथा पहुँचाई। सन् १७०० में इंग्लैण्ड के तृतीय राजा विलियम ने कानून द्वारा इंग्लैण्ड में भारतीय वस्त्र का व्यापार रोका। उसने यह सरकारी आज्ञा निकलवा दी कि—जो स्त्री पुरुष भारतीय रेशम या छींट बेचेंगे अथवा अपने व्यवहार में लावेंगे उन्हें दो सौ पाउण्ड जुर्माना देना पड़ेगा !!! इसी तरह अन्यान्य देशों ने भी कानून बनाकर अन्यायपूर्वक हमारे देश के वस्त्रों का अपने देश में प्रवेश रोक दिया। नये नये आविष्कार भी हो गये। फिर क्या था; मैंचेस्टर, लंकेशायर, ब्लैकवर्न आदि के भाग्य के पलटा खाया और भारत पर सवार हो गये। यहाँ शासन का बड़ा भारी बल लगा। यदि भारत पराधीन न होता तो अपने ... बेधड़क आनेवाले विदेशी वस्त्र का एक धागा भी भारत में नहीं आने देता किन्तु पराधीन होने के कारण चुप हो जाना पड़ा ? शासक ही अपने शासित की रक्षा न करे तो कौन करे ?

"पहिरे वाला चोर हो तो कौन रखवाली करे !
बाग़ का क्या हाल हो माली जो पामाली करे !"

चौथा अध्याय ।

भारत के रेशमी और ऊनी वस्त्र व्यापार का नाश

जिस तरह देश के सूती वस्त्रों के व्यापार को बरबाद किया गया उसी तरह रेशमी, ऊनी और सन आदि से बने वस्त्रों का भी अस्तित्व मिटा दिया गया। संस्कृत पुस्तकों में रेशम के लिए कौशेय, पत्रोर्ण, चीन पट्ट तथा चीनांशुक शब्द व्यवहृत है। चीन पट्ट और चीनांशुक दोनों शब्द रेशम के वस्त्र का चीन देश से सम्बन्ध होना प्रदर्शित कर रहे हैं। बहुत से लोगों का तो कहना है कि सबसे पहिले चीन देश में ही रेशम का व्यवहार हुआ है किन्तु यह विश्वास योग्य बात नहीं है। वाल्मीकिप्रणीत रामायण में तथा वेद में रेशम के लिए क्षौम तथा कौशेय शब्द आया है। जो अलसी के छिलके द्वारा तैय्यार होता है वह क्षौम कहाता है और जो कोष से तैय्यार हो वह कौशेय। इस कौशेय को आजकल के लोग टसर कहते हैं। नाग, लकुच, बकुल बरगद आदि पेड़ों के पत्तों पर एक प्रकार के तंतु पाये जाते हैं उन्हें पत्रोर्ण कहते हैं। यह रेशम कौशेय से बढ़िया होता था। महाभारत में रेशम के लिये पट्ट और कीटज शब्द प्रयुक्त हैं। आज से सत्रह

सौ वर्ष पहिले मालावार के किनारे से भारतीय रेशम रेड नामक समुद्र पार करता हुआ रोम पहुँचता था। कुस्तुनतुनियाँ के बादशाह भी भारत के रेशमी वस्त्रों को खूब पसन्द करते थे। यवनकाल में रेशम ने भारत में बहुत ही आशातीत उन्नति की इसका अधिक श्रेय बादशाह अकबर को है। "नूरजहाँ" को व..: भूमि का रेशम अत्यंत प्रिय था। बरनियर नामक यात्री कहता है कि—

"बंगाल में इतना रेशमी माल तय्यार होता है कि वह अकेले मुगल साम्राज्य को ही नहीं बल्कि योरप के सारे साम्राज्यकी आवश्यकता को भी पूर्ण कर सकता है।

सर जार्ज बर्डउड तथा डा० हण्टर ने लिखा है कि "इसका पूरा सबूत है कि सन् १५५७ में मालदह शेख भेखू ने तीन ..हाज़ों में रेशमी माल भर कर समुद्री राह से रूस भेजा था।" (Sir George Birdwood—Indian Arts P. 375) मालदह के रेशम का कई जगह ज़िक्र मिलता है। बंगाल में रेशमी कपड़ा बहुत तय्यार होता था। मि० ट्रवर्नियर अपनी यात्रा पुस्तक में लिखता है कि "मुर्शिदाबाद से प्रति वर्ष २२ हजार गाठें रेशमी माल की बाहिर भेजी जाती थीं।" स्मरण रहे प्रत्येक गाँठ पचास सेर की होती थी। यही कारण था कि सन् १७५७ ई० में जब लार्ड क्लाइव मुर्शिदाबाद गये तब उसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था—" यह शहर लन्दन की तरह विस्तृत, आबाद और धनी है। इस शहर के लोग लन्दन से भी बढ़कर मालदार हैं।"

ज्योंही इंगलैण्ड के स्पाइटलफील्डस् (Spital fie'ds) में रेशम का कपड़ा मशीनों द्वारा तैयार होने लगा त्योंही अन्यायपूर्वक भारतीय रेशम का इंगलैण्ड में आना रोक दिया गया जैसा हम अपने तीसरे अध्याय में अभी कह आये हैं। यहीं से रेशमी वस्त्र का व्यापार शिथिल पड़ गया। अब ज़रा भारत से विदेशों में जानेवाले रेशमी वस्त्र का विवरण भी देख लीजिये।

रेशम	सन् १७७२ ई०	१७८५ में	१७९५ ई०	१८०५
पाउण्ड (वजन)	१८००००	३२४३०७	३२०३५२	८३५९०४

धीरे धीरे बढ़ कर सन् १८६७-६८ में २२२६२०१ पाउण्ड (वज़न) रेशम विदेशों को गया। इसके बाद धीरे धीरे रेशम का बाहर जाना घटने लग गया और नहीं के बराबर इसका व्यापार हो गया। यह तो हुई भारत से विदेशों में जानेवाले रेशम की बात। अब भारत में विदेश से कितना रेशम आता है यह भी जान लेना ज़रूरी बात है। सन् १८३६-३७ में ५८॥ लाख रुपयों का रेशम देश में आया; १८८१-८२ में १३५ लाख रुपयों का, १९००-०१ में १६६.५ लाख रुपये का—१९०४-५ में २११.८ लाख रुपये का; १९०७-८ में ३०० लाख रुपये तथा १९१२-१३ में ४३६ लाख रुपये का आया। इसमें कच्चा रेशम, सूत, कपड़ा वगैरः सब शामिल है। विदेश से आनेवाले रेशमी (कच्चे माल का) विवरण इस प्रकार है—

देश	सन् १९०९-१०	सन् १९१२-१३	सन् १९१६-१७	सन् १९१-१८
चीन और हांगकांग	८८७७	१६०५२	१००८०	१०५९०
स्टेट सेटिलमेंट	७०८	४९८	१६५	१५
अन्य देश	१८९	५९५	८२५	१००५
	हज़ार	रुपये		
कुल जोड़	९७९९	१७१४५	११०७०	११६१०

विदेशी रेशमी तय्यार माल की आमदनी—

देश	सन् १९१२-१३	सन् १९१३-१४	सन् १९१६-१७
मूल्य हज़ार रु०			
रेशमी थान "	२०३६२	१९१८५	१९०६८
मिलावटी रेशम "	५८३७	६९५२	४८७१
रेशमी सूत रु०	४०५४	४५८२	३८८२
अन्य	२३८	२९४	५८९
कुल जोड़	४७६७६	४३६३	२८४४०

अब रेशम की आमदनी और रफ़्तनी दोनों ध्यान से देख लीजिये।

रफ़्तनी

देश	सन् १९१३-१४	सन् १९०४-५
युनाइटेड किंगडम लाख (रुपये)	२	३
फ्रांस	×	१
अदन	१	×

आमद

देश	सन् १९१३-१४	सन् १९०४-५
युना० (लाख रु०)	२८	१७
फ्रांस	२५	३१
जापान	१४५	५१
चीन	६४	३५

उक्त कोष्ठकों के देखने से पाठकों को रेशम विषयक सब बातें मालूम हो गई होंगी। अब रेशमी कपड़ा तैयार करनेवाली मिलों की संख्या बतलाना है—इन्हें लोग गिरनीघर कहते हैं।

ये गिरनीघर हमारे भारत में कुल तीन हैं। एक कलकत्ते में और दो बम्बई में। इनमें १३८६ मनुष्य काम करते हैं। हमारे देश में रेशमी वस्त्रों पर सुनहरी तथा रुपहरी ज़री के तारों से कसीदा होता था। इसका वेद, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों से पता चलता है। इसके लिए आगरा, बनारस, अहमदाबाद, बड़ोदा, सूरत, बुरहानपुर, औरंगाबाद, रामपुर, तंजोर और त्रिचनापल्ली मशहूर हैं। अब हम रेशम के विषय में अधिक न लिख कर थोड़ा बहुत ऊन का वर्णन करेंगे। सन के विषय में हम कुछ भी नहीं लिखेंगे क्योंकि उसके बने वस्त्रों का सम्बन्ध रेशम से है जिसका हाल हम पीछे लिख आये हैं। और सन् की आमदनी रफ़्नी तथा कारख़ानों के उल्लेख से व्यर्थ ही पुस्तक का आकार बढ़ जावेगा। यदि पाठकों की इच्छा हुई तो इसके द्वितीय संस्करण में सन् के व्यापार का भी वर्णन कर दिया जावेगा।

वैदिक काल से अनेक वस्त्रों का प्रयोग भारत में हो रहा है। इसका विस्तृत हाल सप्रमाण इस पुस्तक के वैदिक काल के अन्तर्गत किया जा चुका है। अर्णज, रांकव, लोमज, शब्द ऊनी वस्त्रों के लिये हमारे प्राचीन इतिहासों में कई जगह आये हैं। उस समय भारत में भेड़ें और दुम्बे बहुत थे, अतएव ऊनी वस्त्रों की भी बहुतायत थी। आर्य्य लोग मांस खाना पाप समझते थे इसलिए भेड़-बकरी सुरक्षित रहती थीं। यहाँ उन दिनों अहिंसा की दुन्दुभी सारे देश में बज रही थी। ज्योंही मांस-भक्षक शासकों का भारत पर प्रभुत्व स्थापित हुआ त्योंही भारतीय पशुओं का उनके पेट में जाना आरम्भ हो गया। जब भेड़ों की कमी हुई तब ऊन भी महँगा हो गया। हिमालय नेपाल आदि स्थानों की रहनेवाली भेड़ें मुलायम बालों की होती हैं—

और समतल भूमि में रहनेवाली भेड़ों के रोंये मोटे होते हैं। पंजाब में सबसे बढ़िया ऊन हिसार ज़िले की होती है। झंग पेशावर, अमृतसर, मुलतान, रावलपिंडी, लाहोर, फीरोज़पुर की ऊन भी अच्छी कही जा सकती है। यू. पी. में सबसे बढ़िया ऊन गढ़वाल, अलमोड़ा और नैनीताल के ज़िलों की होती है। यह ऊन पंजाब और युक्तप्रान्त के कारख़ानों के लिए पर्याप्त नहीं है।

हमारे हिन्दुओं के घरों में ऊन पवित्र माना जाता है। पूजा के समय तथा पवित्रता के लिए ऊनी वस्त्र ही प्रयोग होते हैं। धनी लोग ऊन की जगह रेशम भी पहिनते हैं। ऐसे वस्त्रों में छुआछूत का कोई असर नहीं होता, ऐसा हिन्दू लोग मानते हैं। यह बात वैज्ञानिक रीति से ठीक है। ऊनी और रेशमी वस्त्रों पर रोग के कीटाणु नहीं टिक सकते। वैश्यों को ऊन की जनेऊ का विधान है।

भारत में ऊन की कई चीजें तय्यार होती हैं। ऊन को जमाकर आसन, कम्बल, घूघी, नम्दे आदि तय्यार किये जाते हैं। इनके अलावा पट्टू, लोई, कश्मीरे और सर्जें वगैरह, कमीज कोट के कपड़े वगैरह भी जगह जगह तय्यार होते हैं। शाल और चादरें यहाँ इतनी वढ़िया तैयार होती हैं कि सारी दुनिया उन्हें पसन्द करती है। जो हालत सूती खादी की हुई वही ऊनी की भी हुई। पहिले तो इस ऊन के वस्त्र करघों पर से ही बनते थे किन्तु अब कुछ दिनों से इसके लिए भी मिल हो गये हैं। अभी तक भारत में ऊन की ६ मिलें हैं। उनमें सबसे बड़ी कानपुर की है। इसमें पचपन लाख रुपये की नक़द पूँजी लगी हुई है। ५४६ करघे और २०२०८ तकुवे चलते हैं। इसमें काम करनेवालों की संख्या ३५२२ (मजदूर १६१५ ई०) है। इसके बाद धारीवाल का नम्बर है। यहाँ की मिल १६ लाख की पूँजी पर

चल रही है। इसमें ४१६ करघे ११६६० तकुए और १६६६ मजदूर काम करते हैं। इनके अलावा एक कलकत्ते में, एक मैसूर में, एक बंगाल में और दो बंबई में हैं किन्तु सब छोटी छोटी हैं।

इन मिलों में सब तरह का ऊनी कपड़ा तय्यार होता है। इनमें से कई कपड़े इतने बढ़िया बनते हैं कि विलायती ऊनी वस्त्र भी झख मारते हैं। परन्तु बढ़िया कपड़ा बनाने के लिए ऊन आस्ट्रेलिया से आती है। जो लोग इनमें बने वस्त्रों को स्वदेशी मानते हैं उन्हें इसका ध्यान रखना चाहिए। मिलों के आलावा करघों पर भी देशी ढंग से, कारपेट, रग, कम्बल, पट्टू और पश्मीना वगैरह तय्यार होता है। हमारे देश में हाथ से इतने बढ़िया गलीचे तय्यार होते हैं जिन्हें देखे ही बनता है। शाल या चादर भी यहाँ हाथ से ही बहुत बढ़िया बनाये जाते हैं। ये दो तरह से तय्यार किये जाते हैं, कानी और अमली। कानी दुशालों में जितने फूल बूटे बनाये जाते हैं वे सब करघों पर ही शाल बुनते हुए उठाये जाते हैं। यह काम इतनी मिहनत का है कि बरसों में कहीं एक दुशाला बनता है। अमली दुशालों पर सूई से बेल बूटे बनाये जाते हैं। वैसे तो काश्मीर ही शाल दुशालों का मुख्य स्थान है किन्तु सन् १८३३ ई० के दुर्भिक्ष में बहुत से काश्मीरी कारीगर पंजाब में आ बसे तब से यहाँ भी दुशाले बनने लगे।

जबसे जर्मनी का ऊनी माल भारत में आने लगा तबसे भारतीय कारीगर उन पर ही सूई से फूल बूटे बना कर दुशालों की जगह बेचने लगे हैं। स्वदेशी वस्त्र के प्रेमियों को दुशाला खरीदते समय बड़ी सावधानी रखने की ज़रूरत है। ये विलायती दुशाले असली काश्मीरी दुशालों की तरह खूबसूरत, मुलायम और गर्म नहीं होते। एक कारण से अभी तक काश्मीर की कारीगरी वहाँ टिकी हुई है और जब तक काश्मीर राज्य और बृटिश राज्य

है तब तक वह क़ायम भी रहेगी। क्योंकि १८४६ ई० की सन्धि के अनुसार काश्मीर राज्य को लगभग आठ हज़ार रुपये की कीमत का एक शाल और ३ रूमाल भारत सम्राट् को प्रतिवर्ष भेजना पड़ता है। देखो (The Kashmir Shawl trade by Anand Kaul in the East and west. Jan 1915)

१८७६-७७ में भारत से १०७ लाख रुपये की कच्ची ऊन विदेशों को गई। सन् १६०३-४ में १३७$\frac{1}{8}$ लाख रुपये की गई। उसी तरह सन् १८७६-७७ में कुल पाँच लाख रुपयों की ही ऊन विलायत से (कच्चा माल) भारत में आई थी पर १६०३-४ में ६·६ लाख रुपयों की आई। इससे अधिक विलायती ऊनी कपड़ों की देश में आमदनी हुई। देखिये—सन् १८७६-७ में ७८ लाख रुपयों के ही ऊनी कपड़े आये थे किन्तु १६०३-४ में २१६ लाख रुपयों के ऊनी कपड़े भारत में आ गये। कारपेट, रग, इ० का मूल्य इससे अलग ही है। सन् १८७६-७ में ७॥ लाख रुपयों का कारपेट, रग, इ० आया था तो सन् १६०३-४ ई० में २६ लाख तक पहुँचा। इधर भारत के ऊनी माल, (शाल गलीचे छोड़कर) की रफ़ुनी घट रही है। सन् १८७६-७ में पाँच लाख रुपयों का माल बाहर गया तो सन् १६०३-४ में एक लाख का ही गया !! अब सन् १६०४-५ के बाद से ऊनी माल की आमदनी रफ़ुनी का टेबल नीचे देते हैं—

ऊनी माल की रफ़ुनी

सन्	१६०६-१०	१६१२-१३	१६१६-१७
	लाख रुपये		
ऊन (कच्चा माल)	२८५	२६३	३७७·६
कारपेट, रग, वग़ैरह	२४	२२·४	२७·३
अन्य		३·३	२·७

ऊनी माल की आमदनी

सन्	१९०९–१०	१९१२–१३	१९१७–१७
	लाख रुपये		
ऊनी कच्चा माल	१०·९	२०·२	२५·
तैयार मालः—			
ऊनीथान		१९४·२	१४०·९
शाल		४८·७	२·४
कारपेट, रग	२०८	१६·६	११·२
मोज़े, गंजी इ०		१२	१२·८
ऊनी सूत इ०		२०	१४·९
अन्य		१४	१४·७

खेद की बात है कि भारतीय ऊन की रफ़्नी घट रही है और विदेशी ऊन की देश में बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है। यह देश के लिए ऊनी वस्त्रों पर बुरा प्रभाव पैदा करेगी। सबसे अच्छी बात तो यह है देश से ऊन (कच्चा माल) विदेशों को न भेजा जावे और देश में ही उससे माल तय्यार किया जावे। यह समय ऊनी व्यापार की उन्नति का है। क्योंकि ऊन के बड़े भारी व्यापारी जर्मन और आस्ट्रियन दुर्दशाग्रस्त हैं। भारत को यह सुअवसर हाथ से नहीं खोना चाहिए।

पाँचवाँ अध्याय ।

स्वदेशी वस्त्रों पर भारी टेक्स ।

पिछले चार अध्यायों से आपको अंगरेज़ी-काल में खादी की दशा का अच्छी तरह ज्ञान हो गया होगा। इस शासन में देश से खादी का नामोनिशान उठ सा गया। लोग खादी पहिनने में अपना अपमान समझने लगे। अंगरेज़ शासकों ने भी खादी का प्राणान्त करने में कोई कसर उठा नहीं रखी। सन् १७०० का खादी के लिए प्राणघातक कानून क्या कुछ कम बात है। कौन ऐसा देश है जो शासकों द्वारा ही देश की इस प्रकार बर्बादी देख कर चुप रहे। यह एक मात्र परतंत्रता की शृंखला से बद्ध भारत है जो अपना सत्यानाश ठंडी छाती से देख रहा है। इतना सब होने पर भी हम अपने शासकों में अत्यंत श्रद्धा भक्ति और पूज्य भाव रखते थे। शासकों की इन चालों से ही मालूम पड़ता है कि वे भारत का कितना भला चाहते हैं! उनके असली विचारों को ऐसे दमन करनेवाले कानून ही हम लोगों के आगे ला रखते हैं। अंगरेज़ी शासन प्रायः व्यापार के लिए ही भारत में है। इससे भारत का अहित हो तो उनकी बला से—उन्हें किसी के सुख दुःख से क्या करना है अपने मतलब से मतलब है।

समय समय पर देशी वस्त्रों पर टैक्स बढ़ा कर भारतीय वस्त्र के व्यापार को धूल धानी करने में अंगरेज़ शासकों ने कुछ

कमी नहीं रखी। हमारी सरकार हम पर शासन द्वारा हमारा शुभ नहीं चाहती। वह तो अपने देशवासियों की हितकामना के लिए भारत पर राज्य कर रही है। सच पूछा जावे तो भारत सरकार लैंकेशायर और मैंचेस्टर के हाथ की कठपुतली है। वे चाहे जिस तरह हमारी सरकार को व्यापार के लिए नाच नचा सकते हैं। सन् १८६६ और १६१७ के "काटन ड्यूटीज़ एक्ट" इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनके देखने तथा उन पर विचार करने से सारा रहस्य खुल जाता है। सन् १८१४ में भारतवर्ष में आनेवाले विदेशी कपड़े पर ३॥) सैकड़ा महसूल लगता था और हिन्दुस्थान से विलायत जानेवाले पर १० फ़ी सैकड़ा महसूल चुकाना पड़ता था!! क्या यह सोचने का विषय नहीं है? इस महसूल की विषमता का क्या कारण है, पाठक स्वयं अन्दाज़ लगा लें। भारतीय ऊनी और रेशमी माल पर २० और ३० तक फ़ी सैकड़ा महसूल लगाया गया था और विलायती पर सिर्फ ३॥) और २) फी सैकड़ा!! यह भारत के साथ अन्याय नहीं तो और क्या है? इस पर एक अंग्रेज़ कहते हैं—

"यह अंग्रेजी जुल्म का नमूना है। इससे मालूम होता है कि इंग्लैण्ड की भलाई के लिए किस तरह हिन्दुस्थान का नाश किया जाता है।"

यह एक अंग्रेज़ सज्जन का कथन है जिसे वे जुल्म कहते हैं और भारत के नाश का कारण भी बताते हैं। यह बिलकुल सत्य है, अक्षरशः सत्य है। इससे बढ़कर अन्याय का नमूना भारतीय व्यापार के लिए और क्या हो सकता है?

इस महसूल की बदौलत सन् १८१५ में एक करोड़ ३० लाख रुपयों का कपड़ा विलायत गया था किन्तु १८३२ में सिर्फ एक करोड़ के लगभग ही गया! इधर विलायती कपड़ा,

दो लाख ६३ हज़ार से बढ़कर ४० लाख के करीब पहुँच गया। यह महसूल सब तरह से अंगरेज़ सरकार के लिए कल्पवृक्ष का काम देता है—महसूल से भी खजाना भरे और महसूल के कारण देशी माल की रफ़्नी कम पड़ जाने से व्यापार से भी खजाना भर जावे। इसका नाम है पॉलिसी—यह पॉलिसी ऐसी है जिसमें भारत का हित दिखाया गया है किन्तु वास्तव में अपने भाइयों का और अपना भला होता है। अशिक्षित भारतवासियों को इसके मर्म को जानने की बुद्धि कहाँ। और यदि कुछ लोग समझते बूझते भी थे तो अपनी धार्मिक बुद्धि के कारण अपने शासक के विरुद्ध कुछ भी नहीं बोलते थे। फल यह हुआ कि व्यापार के द्वारा देश की सारी सम्पत्ति इनके हाथों चली गई और देश कंगाल बनकर चुप हो रहा। यद्यपि भारतवासियों की दम नहीं थी कि वे अपने गौराङ्ग महाप्रभुओं की इस नीति के विरुद्ध कुछ आवाज़ उठाते किन्तु देखिये एक अंग्रेज सज्जन मि० मांटगोमरी मार्टिन सच्ची बात कह रहे हैं—

"हम लोगों ने भारतनिवासियों को मजबूर किया है कि वे विलायती वस्त्र ही खरीदें।"

(देखो—Iudia in the Victorian age by mr. R. C. Datta।

इतने पर ही इति-श्री नहीं हुई। सन् १८९६ में मोटा कपड़ा बनानेवाली भारतीय मिलों पर भी भारत के भारत में ही ३½ फ़ी सैकड़ा महसूल लगा दिया। जिससे भारत का वस्त्र महँगा पड़े और समुद्रों पार से आया हुआ माल सस्ता पड़े तथा भारतीय स्वदेशी मिलों का बना हुआ न खरीदकर विलायती ही खरीदें। इस महसूल से लेंकेशायर को कुछ भी लाभ न

हुआ सही परन्तु गरीब भारत का बड़ा भारी नुकसान अवश्य हुआ। सिर्फ वस्त्र व्यापार को हरा भरा रखने के लिए इन्हें बहुत कुछ एक्ट बनाने पड़े और बहुत सी चालाकियाँ खेलनी पड़ीं। इनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर हमारे भोले-भाले भारतीय भाइयों ने अपने धन को दूसरों के हाथ में देना आरम्भ कर दिया और कुछ भी अपना हित अहित तथा आगा पीछा नहीं सोचा।

विदेशी व्यापारी ही सच्चे व्यापारी हैं। वे भारतीय रूई बिलकुल सस्ते भाव में रुपये की २।३ सेर खरीदकर ले जाते हैं और उसीका माल बनाकर चार पाँच सेर वजन २५।३० या इससे अधिक मूल्य में यहाँ ही बेच जाते हैं। इसको कहते हैं "मियाँ की जूती और मियाँ के सिर !" यह है सच्चा व्यापार। इधर हमारे देश के वस्त्र-व्यापारियों को देखिये। वे विदेशी माल के दलाल बने हुए हैं। सैंकड़े पीछे थोड़ा बहुत मुनाफ़ा लेकर भारतीय धन को दोनों हाथों से विलायत को उलींच रहे हैं। इन्हें अपने भले बुरे का ज्ञान ही नहीं बल्कि उसे समझाने पर समझने की बुद्धि तक का दिवाला है। ये विदेशी माल पर २।४ पैसे लाभ उठाकर ही अपने को बड़ा भारी व्यापारी और अपने व्यापार की उन्नति की पराकाष्ठा समझते हैं। यही बात मिलों के लिए भी कही जा सकती है। मिलों में सभी यंत्र और तत्सम्बन्धी सभी सामान करोड़ों रुपयों का विदेशी है। सिर्फ़ बिल्डिंग का चूना, ईंट, पत्थर तो स्वदेशी होता है! बाकी लकड़ी, लोहा, कांच इत्यादि प्रायः सब कुछ समुद्रों पार से आता है अर्थात् स्वदेशी वस्त्र तय्यार करने के लिए करोड़ों रुपये पहिले विदेशों को देने पड़ते हैं और हमेशा देते रहते हैं। हिसाब लगभग विदेशी वस्त्रों का सा ही पड़ जाता है।

भारत आज जिस संकट में फँसा है उसका यदि ध्यानपूर्वक कारण सोचा जाय तो यह खादी का अभाव ही है। भारत में जितना विदेशी सामान आता है उसमें आधे से भी अधिक वस्त्र होता है। लगभग ८४ करोड़ रुपयों का देश में विदेशों से कपड़ा ही कपड़ा आता है!! विदेशी कपड़े के व्यापार ने स्वदेशी वस्त्र के उद्योग-धन्धे को बिलकुल नष्ट कर दिया। देश की इस गिरी हुई अवस्था में भी भारतीय वस्त्र का व्यवसाय कृषि के बाद देश का सब से बड़ा व्यवसाय है। ऐसे बड़े भारी व्यवसाय के विदेशी लोगों के हाथ में जाने से देश की दुर्दशा हो गई। वह बेकारी दरिद्रता के रूप में देश को जर्जर कर चुकी है। राजनीतिक गुलामी की जड़ जमाने में और उसे पूर्ण रीति से गहिरी पहुँचा कर मज़बूत करने में आर्थिक गुलामी और दरिद्रता का कितना हाथ होता है, यह भी प्रत्यक्ष है। तिस पर भी भारतीय इतिहास में ऐसे कई ज्वलन्त उदाहरण हैं जिनसे शासकों द्वारा प्रजा को दरिद्री करके अपनी जड़ मज़बूत करना स्पष्ट सिद्ध होता है। दरिद्रता के फलस्वरूप अकालों का देश में जन्म होना, हमारे करोड़ों भाइयों का भूखों अधपेट रहना, और अनेक आपत्तियों का शिकार होना स्वयं सिद्ध है। चर्ख़ा बन्द होते ही बेकारी के कारण स्त्रियों को सड़कों पर गिट्टी कूटना, वेश्या बन कर पेट भरना तथा उपनिवेशों में जाने के लिए विवश होना पड़ा। अमेरिका के "Nation" नामक साप्ताहिकपत्र के विद्वान् सम्पादक लिखते हैं कि—

"हम उस आर्थिक बहाव को बन्द कर सकते हैं जिसने देश में (भारत) अकालों और अशिक्षा की वृद्धि की है तथा एक समय के सुखसम्पत्ति और समृद्धिशाली देश को 'इस समय संसार का सबसे ग़रीब देश बना दिया है।"

बात सच है, लेकिन इसका उपाय एकमात्र विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी का पूर्ण प्रचार ही है।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जब से राज्य आरम्भ किया तभी से भारतीय व्यापार के अन्त की नींव पड़ी। आरम्भ में तो भारत की बात ही ऊँची रही क्योंकि यहाँ के उद्योग-धन्धे उन्नति के अत्युच्च शिखर पर थे। विलायत भी इनकी बराबरी आज तक नहीं कर सका है। कई हज़ार वर्ष पहले की मिसर देश में मम्मियों की लाशें जो अब भी क़बरों से निकली हैं वे भारत की बनी बहुत बढ़िया बारीक़ खादी में लिपटी हुई हैं। यह हमारे देश के वस्त्र व्यापार का सबसे पुख़्ता प्रमाण है। हमारे चढ़े बढ़े व्यापार को पेंदे बिठाने और अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए भारतीय वस्त्रों पर .ख़ूब कड़ा टेक्स लगाने की चालें खेली गईं। इस तरह के दाँव-पेचों द्वारा विलायती उद्योग-धन्धों ने .ख़ूब उन्नति कर ली। इंगलैण्ड के व्यापारियों ने अवैध व्यापार-नीति का अवलम्बन किया। इससे भारत और इंगलैण्ड दोनों देशों के माल की आमदनी रफ़्तनी .ख़ूब बढ़ गई लेकिन व्यापार का ढंग पलट गया। उल्टी गंगा बहने लगी। इंगलैण्ड तो तैयार माल भेजने लगा और भारत तैयार माल के बदले कच्चा माल देने लगा। विदेशी व्यापारियों के मन की हो गई। परिणाम यह हुआ कि बेचारा भारतवर्ष अपने उद्योग-धन्धों को विदेशियों के सिपुर्द कर कृषक बन गया।

अंगरेज़-काल में आरम्भ से ही उन्मुक्तद्वार (व्यापार) की नीति है। विदेशी माल के आने और देशी माल के जाने में किसी प्रकार की बाधा नहीं है! यह बात जरा विचारने की है। जब जब विलायती माल पर टेक्स लगाया है तब तब देश में बननेवाले माल पर भी लगाया गया ताकि देशी माल विदेशी

से सस्ता न पड़े। इस किस्म का व्यापार देश के लिए हानिप्रद है। यद्यपि विदेशी व्यापारी इस नीति से प्रसन्न हैं क्योंकि उन्हें इससे बड़ा भारी लाभ है; तथापि भारत के लिए तो इसने विष का काम किया है। जब तक ऐसी नीति रहेगी तब तक हमारे भारतीय पुराने धन्धे नहीं सँभल सकते फिर नये धन्धे कैसे खड़े हो सकते हैं? स्वर्गीय दादाभाई नवरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, सुब्रह्मण्य ऐय्यर, रमेशचन्द्रदत्त, जी० ही० जोशी, गोपालकृष्ण गोखले आदि दूरदर्शी विद्वान नेताओं ने इस नीति को भारत के लिए बहुत बुरा बताया है।

सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह (गदर) के बाद सरकार ने अपने टेक्सों को बढ़ा दिया। कारण इसका यह था कि सरकार को बड़ी भारी आर्थिक हानि का सामना करना पड़ा। यह एक अंगरेज़ी सरकार का नियम है कि ज्यों ही उसके खज़ाने में थोड़ी बहुत घटी आई कि वह कमी अपनी प्रजा से टेक्स वगैरः बढ़ाकर वसूल कर लेती है और खुद का खज़ाना भरपूर कर लेती है। प्रजा चिल्लाती ही रहती है लेकिन उसके चिल्लाने की कुछ भी परवाह न करके बधिर बनी हुई अपना मतलब बनाती रहती है। टेक्स की वृद्धि का प्रभाव हमारे वस्त्रों पर भी पड़ा और वे महँगे हो गये। योरोपीय महाभारत के कारण तो कपड़े की इतनी महर्घता बढ़ गई कि जिसके सारे भारत के नाक में दम आ गया। सृष्टि के आरम्भ से आज तक कभी भी हिन्दुस्तान में ऐसी महँगी का भारतवासियों को सामना नहीं करना पड़ा था!

ब्रिटिश सरकार का बहुत कुछ रुपया अपने मित्रों की सहायता के लिए योरोपीय महासमराग्नि में आहुति हो गया। इस अवधि में सरकार बहुत कर्ज़दार हो गई है। उसे गत ४

साल में ९० करोड़ का नुकसान है और इस १९२१-२२ में भी लगभग १० करोड़ १९ लाख रुपयों का घाटा होने की सम्भावना है। अब इस दिवाले की पूर्त्ति के लिए कपड़े पर कोई टेक्स नहीं बढ़ाया गया क्योंकि इन दिनों भारत का ध्यान अपने वस्त्र व्यापार की ओर विशेष रूप से लगा हुआ है। या यों कहिये कि स्वराज्य आन्दोलन की प्रथम मंजिल वस्त्र ही रक्खा गया है। सारे देश की दृष्टि वस्त्रों पर ही लगी हुई है। इस समय स्वदेशी खादी और विदेशी वस्त्रों के बीच में बड़ा भारी युद्ध हो रहा है। एक दूसरे का प्रतिद्वन्दी है और स्पर्द्धायुक्त है। ऐसी दशा में यदि वस्त्र पर कर बढ़ा दिया जाता तो खादी के सामने विलायती वस्त्र को शीघ्र ही कूच करना पड़ता। इसलिए इस दिवाले का घाटा कपड़े पर न डाल कर इस बार रेल, डाक, दियासलाई, नमक आदि आवश्यकीय वस्तुओं पर टेक्स लगाया गया। यद्यपि जनता इस नये टेक्स और नई महँगी से बिलकुल घबरा रही है तो भी इन भारी टेक्सों को ज्यों त्यों करके सह रही है।

छठा अध्याय ।

स्वदेशी में स्वाधीनता ।

एक कहावत है कि "सबै दिन नाहिं बराबर जात ।" गीता में भी कहा है कि—

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं ॥
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥"

अर्थात्—जब अधर्म पराकाष्ठा को पहुँच जाता है तब उसको मिटाने के लिए किसी एक महापुरुष का जन्म होता है जो अन्यायियों को नीचा दिखा कर साधुओं के लिए सुख और शान्ति प्रदान करता है। हमारे वेदकालीन चरखे और करघे का अन्त हो चुका था। राष्ट्र और धर्म से घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाले खादी वस्त्र का भी अन्त हो चुका था। वस्त्र से जातीयता और राष्ट्रीयता का विशेष सम्बन्ध है। जो देश अपने घरू वस्त्रों से अपने शरीर को नहीं ढँक सकता, कहना चाहिए कि वह देश बिलकुल अवनत दशा को पहुँच चुका।

ईश्वर की कृपा से महात्माओं का जन्म भारत में होने लगा। उन्होंने भारतीयों को आत्मसम्मान, स्वावलम्बन, और स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया और इन सबकी जड़ स्वदेशी बताया।

एक देशभक्त किन्तु राजभक्त महापुरुष भारत की दुर्दशा को देखकर भारत को रक्षा के लिए उठा। इस महापुरुष को युद्ध के बाद भारत को अन्य देशों के बराबर अधिकार मिलने की आशा थी। अतएव इसने जी जान से सरकार को युद्ध के लिए सहायता पहुँचाई। तन मन धन से यह सरकार के लिए तय्यार रहा, और बड़ी लम्बी चौड़ी आशा बाँधे रहा। किन्तु युद्ध के बाद सब निष्फल हुआ। भारत की सेवा का सरकार ने तिलभर भी ख़याल नहीं रखा। समान अधिकार देने की बात तो दूर रही, उलटे बचे खुचे अधिकारों की हत्या करने के लिए "रौलेट एक्ट्" जैसे ज़हरीले कानून भारत के लिये घड़े जाने लगे। देश की सेवा का कुछ भी विचार नहीं किया गया। निर्धन, दुर्भिक्षग्रस्त, भारत ने करोड़ों रुपये अपना पेट काटकर जिस सरकार को दिये, ११ लाख ६१ हजार ७८९ वीर योद्धा जिसने उसकी सहायता के लिए समुद्रों पार भेजे, जिसके एक लाख एक हजार ४३९ योद्धा घायल और ला पता हैं जिसमें बहुत सी माताएँ और बहिनें अपने पुत्र, भाई और पतियों को सरकार की सहायता में भेजकर उनसे हाथ धो बैठी हैं; उसी भारत के साथ युद्ध के बाद का बर्ताव बड़ा ही रोमांचकारी और हृदयविदारक है। अमृतसर के जलियाँवाले बाग में जो हत्याकाण्ड हुआ है वह युद्ध की सेवा का भारत को पुरस्कार है। हजारों भाइयों पर—निरस्त्र, शान्त भारतवासियों पर मेशीनगन द्वारा (Sharp nosed) कारतूसों की वृष्टि करना, वहाँ की गलियों में पेट के बल चलाना, माताओं और बहिनों को राक्षसों की भाँति अपमानित करना—भारत की सेवा का और खासकर हमारे पंजाबी भाइयों की युद्ध सेवा का इनाम है!!

जो महापुरुष सरकार पर श्रद्धा और विश्वास रखता था उसकी सारी आशाएँ काफूर हो गईं। उसे इस आसुरी कार्य पर अत्यंत शोक हुआ। मैं इस महापुरुष का नाम आपको बता देना चाहता हूँ—यह दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह संग्राम का विजेता सेनापति भारत माता का सच्चा सपूत, भारतवासियों के हृदय मन्दिर में स्थान प्राप्त महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी हैं। उन्होंने भारत पर होनेवाले अत्याचारों से भारत की रक्षा का उपाय सोचा, और आसुरी सरकार से अपना एकदम स्वयम् सम्बन्ध छोड़कर दूसरों को भी ऐसी सरकार से अपना सम्बन्ध त्याग करने की आज्ञा दी। यहाँ से सशस्त्र और निरंकुश सरकार से निरस्त्र, अहिंसाव्रती, और शांत भारतवासियों का युद्ध आरम्भ हुआ। पंजाब के हत्याकाण्ड से भारत में बड़ी हलचल मच गई। भारतवासियों की नींद खुल गई। निर्दोष निरपराध भाइयों को सरकार के हाथों मरते देख कर कौन ऐसी सरकार पर बिना सन्देह दृष्टि से भरोसा कर सकता है? यहीं से अंग्रेज़ी सरकार के प्रजा प्रेम की पोल खुल गई। लोगों ने समझ लिया कि हमारे साथ धोका हो रहा है। यहाँ तक कि भारतेतर राष्ट्रों ने भी इस हत्याकाण्ड की निन्दा की किन्तु बृटिश सरकार को कुछ भी पश्चात्ताप नहीं हुआ!

ऐसा कौन कृतघ्न और पाषाण हृदय मनुष्य है जो अपने देश की इस प्रकार अपनी सरकार—माई बाप सरकार द्वारा दुर्दशा देख कर शान्त बैठा रहेगा और फिर भी ऐसी सरकार को "जी हज़ूर" "ग़रीबपरवर" आदि शब्दों से सम्बोधन करेगा? जिन्हें स्वाभिमान है, जिनमें जातीयता और राष्ट्रीयता के थोड़े भाव भी विद्यमान हैं, जिन्हें अपने स्वत्वों का खयाल

है, जो अपनी मातृभूमि को "स्वर्गादपिगरीयसी" मानते हैं वे आत्माएँ कदापि चुपचाप ऐसे अत्याचार को नहीं देख सकतीं। माहात्मा गांधी उठ खड़े हुए और उन्होंने भारतवासियों को ऐसी सरकार से अलग होने का उपदेश किया। महात्माजी ने जो पहिला उपदेश दिया वह हमें वैदिककाल की याद दिलाता है। उन्होंने कहा है—

"देश बन्धुओ! चर्खा कातो, कपड़े बुनो और खादी पहिनो, तुम्हारे सब कष्ट दूर हो जावेंगे। स्वराज्य प्राप्ति का एकमात्र मूल मंत्र खादी ही है।

क्या ही उत्तम मूल मंत्र है। गुलामी से छुड़ानेवाला कैसा उत्तम उपाय है? न इसमें हिंसा है न किसी प्रकार का झगड़ा ही है। जो हमारे इस इतिहास के वैदिककाल को पढ़ चुके हैं उन्हें महात्माजी के उक्त आदेश में कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता। किन्तु बहुत से क्या अधिकांश ऐसे लोग हैं जो अभी तक महात्माजी के उक्त कथन की दिल्लगी उड़ा रहे हैं और इस पर विश्वास नहीं लाते। परन्तु यह एक ऐसी बात है जिसे साधारण बुद्धि के मनुष्य न तो समझ ही सकते हैं और न उस पर विश्वास ही रख सकते हैं। हाँ, जो लोग इतिहास को थोड़ा बहुत पढ़ चुके हैं उन्हें थोड़ा बहुत समझाया जा सकता है कि "खादी से स्वराज्य कैसे मिल सकता है?"

कई लोगों का निश्चय है कि बिना शस्त्र बल के या खून खराबी के स्वराज्य कदापि नहीं प्राप्त हो सकता! इसके लिए वे इतिहासों के पृष्ठ पलट कर प्रमाण बताते हैं और ऐसा एक भी उदाहरण नहीं पाते कि "अमुक देश ने केवल कपड़े पहिन कर ही स्वराज्य पा लिया और अन्यायी राजा को हटा दिया।" यह

बिलकुल ठीक है कि इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। किन्तु साथ ही यह भी प्रश्न पूछा जा सकता है कि किसी देश के ऐसे अत्यंत पतन का और ऐसे व्यापारी शासकों के हाथ में पड़ने का प्रमाण भी इतिहास में मिलता है या नहीं?" बात तो यह है कि जैसी और जिस तरह से भारत की अवनति हुई है वैसा उदाहरण आज तक किसी ऐतिहासिक पुस्तक में नहीं मिलता। इसलिए यह कोई आवश्यकता नहीं कि जो कुछ भी पहिले हुआ हो वही आज हो। हमेशा जो कुछ भी कार्य होता है वह देश-काल और पात्र के लिहाज़ से होता है। अतएव यह समय अहिंसा पूर्वक स्वदेशी प्रचार द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करने का है। क्यों है? और किस कारण है? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर आपको आगे चल कर मिल जावेगा।

अंगरेज़ काल के आरम्भ में ही, जिस ढंग से इन्होंने भारत पर अपना प्रभुत्व जमाया है बताया जा चुका है। जो व्यापारी नीति अंगरेजों के आगमन के समय में थी, वही नीति प्रायः अब तक भी है अर्थात् अभी तक इनका व्यापार चालू है। इन्होंने अपनी नीति को बिलकुल नहीं बदला। हम अपनी भारतीय वर्ण व्यवस्था के अनुसार इन्हें वैश्य कह सकते हैं क्योंकि इनका धंधा व्यापार है। अंगरेज़ व्यापार के बल पर ही इतने चढ़े हुए हैं अर्थात् इनकी जड़ व्यापार है। इनका जीवन मरण व्यापार पर ही अवलम्बित है। जिस ढंग से इन्होंने भारत में पैर जमाये उसी ढंग के विपरीत कार्य करने से इनके पैर उखाड़े जा सकते हैं। यदि एक व्यापारी वैश्य को नीचा दिखाना है तो सबसे पहिले उसके व्यापार को बिगाड़ना पड़ेगा—ऐसा करते समय उससे सम्बन्ध त्याग भी करना होगा। बस यही बात हमारे स्वदेशी प्रचार और विदेशी बहिष्कार में है। यदि

हमने स्वदेशी के महत्व को समझ कर इसमें सफलता प्राप्त कर ली तो निश्चयपूर्वक अंगरेज़ी शासन की जड़ ढ़ीली पड़ जावेगी। व्यापार की वस्तुओं में या भोजन के बाद की वस्तुओं में कपड़े का ही प्रथम नम्बर है। या यों कहें तो अतिशयोक्ति न होगी कि अंगरेज़ों का आधा व्यापार वस्त्र ही है।

स्वदेशी वस्त्र खादी को अपनाना और विलायती वस्त्रों को हटाना ही हमारी परतंत्रता को नष्ट करने का एक मात्र साधन है। अब तो "खादी से स्वराज्य" "खादी से स्वतंत्रता" सुनकर हँसने वाले महाशयों का सन्देह निवारण हो गया होगा। निस्संदेह चरखे के सूत्र से ही—खादी से ही स्वराज्य मिलेगा। दूसरी बात यह है कि—शासक का बड़ा भारी बल धन है। जिस शासक का खज़ाना खाली हो वह कदापि राज्य नहीं कर सकता। एक न एक दिन उसे नष्ट होना पड़ेगा। राजनीति के पंडित इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि बिना धन के राज्य एक दिन नहीं टिक सकता। बस ज्यों ही हमारे स्वदेशी प्रचार और विदेशी बहिष्कार द्वारा इनके खजाने खाली हुए त्यों ही इनके पाप और अन्याय का प्रायश्चित्त हुआ समझिये। अतएव स्वराज्य प्राप्ति का मूल मंत्र चरखा और खादी में ही है।

एक बात और भी है, जिसे नीचा दिखाना हो और शक्तिहीन बनाना हो उसे सब से पहिले मित्रों की सहायता से वंचित कर देना चाहिए। अर्थात् उसके मित्रों को इतना निर्बल बना देना चाहिए कि वे उसकी सहायता के योग्य ही न रहें। यदि उसके मित्रों के बल को परवाह न की गई तो नीचा दिखा देना असंभव है। हमारी सरकार के बहुत से मित्र हैं। वे सब के सब क़रीब क़रीब व्यापारी ही हैं—या यों कहिये कि इनकी

दोस्ती ही व्यापार की है। इनके व्यापारी दोस्त तभी निर्बल बनाये जा सकते हैं जब कि हम विदेशी माल का पूर्ण बायकाट कर दें। इस बायकाट की नींव वस्त्र है। विदेशी वस्त्र का बहिष्कार ही हमारे स्वराज्य की नींव है। जितने अच्छे ढंग से इसका बहिष्कार किया जावेगा उतनी ही अच्छी और गहरी नींव भारतीय-स्वराज्य की पड़ेगी। वस्त्रों के साथ ही साथ जो लोग विदेशी अन्य वस्तुओं पर ध्यान देते हैं वे व्यर्थ के झगड़े में पड़ते हैं—अभी गहरी उलझन में उलझना ठीक नहीं। पहिले वस्त्रों का काम अर्थात् स्वराज्य की नींव को पुख़्ता हो जाना चाहिए; उसके बाद इन जाली, झरोखे, दरवाज़े, दीवार, छत आदि का विचार करना चाहिए। सब से पहिले स्वराज्य—भवन की पुख़्ता नींव खादी द्वारा रखी जाने की बड़ी भारी आवश्यकता है। यह तो एक बहाना मात्र है कि अमुक अमुक वस्तुएँ तो विदेशी हैं, केवल वस्त्र पहिन लेने से क्या होगा? इस प्रश्न का उत्तर हम जहाँ तहाँ दे चुके हैं। व्यर्थ ही दुबारा इस पर कुछ लिखना पिसे हुए को पीसना है।

हमारे स्वदेशी प्रचार का मतलब यह नहीं है कि कूपमंडूक की भाँति हिन्दुस्थान अपना व्यापार अपने देश के लिए ही सीमाबद्ध कर ले। इसे अन्य देशों के साथ व्यापार करना पड़ेगा; क्योंकि बिना इसके भारत की साम्पत्तिक अवस्था कुछ ही दिनों में खराब हो जावेगी। हमारे व्यापार का रुख़ वैदिक काल और यवन-काल के समान होगा। विदेशों को कच्चा माल दे देकर भारत भिखमंगा नहीं बनेगा बल्कि तय्यार माल देकर अपने सुख सम्पत्ति को बढ़ाता हुआ अन्य स्वतन्त्र देशों का मुक़ाबिला करेगा।

परन्तु एक बात यहाँ ऐसी है जो बड़े ही मार्के की है। देशी

वस्तुओं का स्थान विदेशी वस्तुओं ने घेर रखा है अतएव देशी चीज़ों के प्रचार के लिए स्थान नहीं रहा। सब से पहिले हमें देशी वस्तुओं के प्रचार के लिए जगह खाली करनी है और वह बिना विदेशी बहिष्कार के असम्भव है; इसलिए सब से पहिला काम भारतीयों का यह है कि वे विदेशी वस्त्र का एकदम बहिष्कार कर दें ताकि स्वदेशी के लिए जगह हो जावे। बिना बहिष्कार के काम नहीं चलेगा और लाभ के स्थान पर हानि नहीं तो निराशा अवश्य होगी। राजनीतिक गुलामी को यदि समूल उन्मूलन करना है तो विदेशी वस्त्र का प्रतिज्ञापूर्वक इसी समय बहिष्कार कर देना प्रत्येक भारतवासी का प्रथम कर्त्तव्य है। हमारा यह बहिष्कार ही देश के लिए परतन्त्रता से मुक्ति दिलाने वाला होगा—इससे देश में ऐसे उद्योग धन्धों की जड़ जमेगी जो अवश्य ही संसार के समस्त देशों को चकित करेंगे। इस बायकाट से देश को सामाजिक, नैतिक और धार्मिक लाभ भी होगा।

आज भारत में महात्मा गान्धी ने नवजीवन उत्पन्न कर दिया है। लोग भी उनके अनुयायी हैं। आज इस पृथ्वी का प्रत्येक मनुष्य क्या शत्रु और क्या मित्र सभी महात्माजी में श्रद्धा और विश्वास रखते हैं। महात्माजी को यदि "अजात शत्रु" कह दें तो अत्युक्ति न होगी। इन्होंने देश को "खादी" का पाठ खूब पढ़ाया है। देशवासियों ने भी उनकी आज्ञा को शिरोधार्य्य कर काम आरम्भ कर दिया। जिनको सत्य और धर्म में विश्वास नहीं है वे महात्माजी की बातों को "खयाली पुलाव" कहते हैं—जो विलासी हैं अर्थात् जिनमें ज़रा भी त्याग भाव नहीं है वे भी अभी विलायती वस्त्र के पक्षपाती हैं। इतने पर भी खादी का प्रचार बड़ी धूम धाम से देश में हो रहा है—ये देश के लिए शुभ लक्षण कहे जा सकते हैं।

सिर्फ खादी आन्दोलन ने ही "इन्द्रासन" को हिला दिया। भारतवासियों के कठोर तपने दुनिया को दहला दिया! हमारे शासक गान्धी के द्वारा अपने व्यापार में कुठाराघात देख कर मन ही मन उसकी रक्षा का उपाय सोचने लगे। सरकार ने अपने व्यापार को नष्ट करनेवालों को अपना शत्रु समझा और अपनी प्रजा को निर्दोष प्रजा को अपना दुश्मन समझ कर उसे सब तरह से सताना आरम्भ कर दिया। अभी तक सरकार के व्यापार की पॉलिसी लोगों पर प्रकट नहीं हुई थी और अब सरकार ने उसे खोलने में अपनी ही दुर्दशा समझी। अतएव, खादी के प्रचारकों को—स्वदेशी के प्रचार करनेवालों को—अराजकता का दोष जबरदस्ती लगा लगा कर दण्ड देने लगी। फल यह हुआ कि सरकारी जेलखाने हमारे २५००० निरपराध खादी के प्रेमियों ने भर दिये। इस बड़ी भारी संख्या को देख कर सरकार का कलेजा दहल गया लेकिन शान रखने के लिए ऐसा करना भी आवश्यक था।

हमारे इस थोड़े से खादी प्रचार से मैंचेस्टर और लैंकेशायर हिल गये। उन्हें अपने दुर्दिन निकट ही दृष्टि आने लगे। विदेशी कपड़े के व्यापारी सिर पर हाथ रख कर रोने लगे। जापान की कई मिलें बन्द हो गईं। यहाँ के कपड़े के व्यापार में शिथिलता आ गई। देखिये गत् मार्च मास तक (१९२२) तक समाप्त होनेवाले साल में सन् १९२०–२१ की अपेक्षा भारतवर्ष में धुला हुआ कपड़ा ७ करोड़ की क़ीमत का ११५००००००० गज़ कपड़ा कम आया। रंगीन कपड़ा १९२०–२१ में ३४ ½ करोड़ रुपयों का आया था तो इस वर्ष (१९२१–२२) में केवल ७½ करोड़ का ही आया!! इसका परिणाम क्या होना चाहिए? हम अपनी लेखनी से न लिख कर यहाँ वलायत के "Mor-

ning post" (मार्निङ्ग पोस्ट) की कही हुई बात ही बता देना चाहते हैं। वह कहता है कि—

"इंगलैण्ड के लोग यदि व्यापार न करें तो वे बड़ी कठिनाई में पड़ जावें और उनका जीवन-निर्वाह हो ही नहीं सकता। अतएव उन्हें एक अच्छे बाज़ार को अपने काबू में रखने की जरूरत है। हिन्दुस्थान ही एक ऐसा बाज़ार है। अतएव स्वायत्त-शासन की आडम्बर पूर्ण बातों का खयाल न करते हुए अंग्रेज़ों को उसे अपने हाथों से नहीं खोना चाहिए।"

इस पर से मामला साफ हो जाता है। भला लैंकेशायर और मैंचेस्टर की बरबादी स्वदेशभक्त अंग्रेज नौकरशाह किस प्रकार चुपचाप देख सकते हैं? यही तो एक मात्र कारण है कि विदेशी वस्त्र न पहिनने का उपदेश देनेवालों को—उन निरपराधों को केवल अपने स्वार्थ साधन के लिए सत्य, धर्म और न्याय को तिलांजलि देकर धड़ाधड़ सज़ा दी जा रही है। अंग्रेजी शासन को न्यायपूर्वक शासन कहनेवालों को इस पर थोड़ा ध्यान देना चाहिए। हमारे भारतवासियों को अंग्रेज़ों से स्वदेश-भक्ति का पाठ सीखना चाहिए। और अपने शरीर पर विदेशी वस्त्रों को देख कर शरमाना चाहिए और देश के साथ अपनी इस कृतघ्नता पर खुद को धिक्कारते हुए शीघ्र ही प्राय-श्चित्त कर लेना चाहिए।

सातवाँ अध्याय ।

स्वदेशी आन्दोलन आत्म-शुद्धि का आन्दोलन है ।

श्रीयुत मि० विपिनचन्द्र पाल कहते हैं—

"The Swadeshi movement is ostensively an offensive movement. The law of the land dose not touch it. To abstain from foreign goods is no crime. To organise—measures of social and relegious ex-comunication against those who may, from powery or perversity be tempted to violate this boy-cott is also absolutely lawful. No one can be punished for reserving to eat with a man who uses foreign goods, and by the inoffensive means a social terroism may by established in the country which will come down the most spirited opponent of this movement + + + The Government even in India cannot interfere with these matters concerning the personal freedom of the people etc:—"

अर्थात्—स्वदेशी आन्दोलन बिलकुल हानिप्रद नहीं है। देश के कानूनों का उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। विलायती माल का बहिष्कार करना कोई अपराध नहीं है। और ऐसे मनुष्यों जो निर्धनता से अथवा मूर्खता से उस बहिष्कार के विरुद्ध हों, समाज और जाति से उसको अलग कर देना नियम विरुद्ध नहीं है। और किसी ऐसे मनुष्य को—जो विदेशी वस्तु काम में लानेवालों के साथ खान पान न रखे—कोई सज़ा नहीं है। ऐसे लाभदायक उपायों द्वारा एक प्रकार का सामाजिक भय स्थापित किया जा सकता है जो स्वदेशी आन्दोलन के बड़े से बड़े शत्रु को भी डरा सकता है। × × × भारत में भी सरकार इन बातों में—जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से सम्बन्ध रखती हैं—किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती।"

पाल महाशय के उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि विदेशी माल का बहिष्कार कानून की सीमा में नहीं आता। हाँ, हमारी सरकार उसमें धींगाधींगी से चाहे जो करे उसमें किसी का कोई चारा नहीं है। इस बात को कौन कह सकता है कि स्वदेश-प्रेम उसके निवासियों के लिए अपराध है! स्वदेश-प्रेम से बढ़ कर इस विश्व में कोई प्रेम नहीं—धर्म नहीं, पुण्य नहीं। परन्तु देश-प्रेम के लिए—उसके बदले में सज़ा पाना जेलखाने में जाना हमारे व्यापारी शासकों की कृपा है—इस परतंत्र भारत के साथ अन्याय है।

विदेशी कपड़ों का व्यापार उन कारणों में सबसे मुख्य और सबसे प्रबल कारण है जिन्होंने देश में प्राणघातक गुलामी की जड़ जमा कर मजबूत बना दी। और जिन्होंने देश के फले फूले हुए और संसार भर में अद्वितीय देशी कपड़े के उद्योग-

धन्धे तथा व्यापार को नष्ट करके करोड़ों लोगों को बेकार कर दिया। इस विनाश और बेकारी का फल यह हुआ कि देश में दरिद्रता का साम्राज्य हुआ; अकालों का जन्म हुआ; करोड़ों मनुष्यों को जीवन भर भरपेट रूखा-सूखा भोजन मिलना भी असम्भव हो गया। लाखों मनुष्य प्रतिवर्ष तरह तरह की नई बीमारियों के शिकार होने लगे। भारत की हजारों कुल ललनाओं को सड़कों पर कंकड़ कूटना पड़ा और देश के पितरों की आत्माएँ यह सुनकर काँपेंगी कि हजारों ही को वेश्यावृत्ति धारण करनी पड़ी तथा फ़िजी आदि उपनिवेशों में जाकर अपना धर्म—छोड़ कर वेश्याओं का सा जीवन व्यतीत करना पड़ा। विदेशी वस्त्रों का व्यापार अब भी भारत का जीवन-रक्त चूस रहा है। इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं—यह इस अभागे भारवर्ष के पिछले दो सौ वर्षों की सच्ची गाथा है।

इस समय विदेशी वस्त्र के बहिष्कार को देश के सभी मनुष्य सच्चे दिल से चाह रहे हैं। गर्म और नर्म; सहयोगी और असहयोगी; राजभक्त और अराजक सभी विचारवान व्यक्ति उसकी उपयोगिता और आवश्यकता को मानने वाले हैं। स्वार्थ, अज्ञान, द्वेष अथवा भय के कारण जो थोड़े से लोग विदेशी बहिष्कार के विरोधी हैं उनके पास कोई विवेकयुक्त ऐसी दलील नहीं जिसे वे पेश करके अपना पक्ष सिद्ध कर सकें। सत्य बात तो यह है कि जो विदेशी कपड़े के व्यापारी हैं उन्हें भी अपने इस कार्य पर रात दिन पाश्चात्ताप है; किन्तु क्या करें गुलामी और परतन्त्रता ने उन्हें

आत्मबल से शून्य कर दिया है। स्वदेशी और बहिष्कार के विषय में मतभेद सम्भव है किन्तु विदेशी वस्त्र के बहिष्कार में किसी प्रकार के मतभेद की गुंजायश ही नहीं है। अर्थशास्त्र और राजनीति दोनों ही विदेशी कपड़े के बहिष्कार का समर्थन करते हैं। समाजशास्त्र भी विदेशी कपड़ों का विरोधी है। मि० हर्बर्ट स्पेन्सर के शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि—विदेशी कपड़े के बहिष्कार के लिए देश के मनुष्यों का चरित्र और मौजूदा हालत देश तथा काल एक दूसरे के साथ पूर्ण सहयोग कर रही हैं।" जिस आन्दोलन के साथ इतना प्रबल लोकमत हो, जिस आन्दोलन की सफलता के लिए संसार की प्रगति अथवा ईश्वरीय शक्ति हमारा साथ दे रही हो, जो आन्दोलन अक्षरशः देश के अन्तरात्मा की ध्वनि हो यदि वह भी व्यवहारिक और सफल नहीं हो तो फिर और कौन सी बात व्यवहारिक और सफल हो सकती है?

विदेशी वस्त्रों को बायकाट करने का तरीक़ा।

अब प्रश्न केवल ढंग का रह जाता है कि किस ढंग से विदेशी कपड़े का बायकाट किया जावे? इस विषय पर बहुत कुछ मतभेद सम्भव है। परन्तु हमारा निश्चय है कि उचित ढंग से होशियार व्यक्तियों द्वारा इस बहिष्कार का काम कराये जाने से सारा मतभेद और आपत्तियाँ नष्ट हो जावेंगी। महात्मा गान्धी के शब्दों में, "आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम अपने ढंगों से हम अपने विरोधियों को भड़का अथवा डरा न दें बल्कि अपने चरित्र बल से उनके हृदयों पर अपना अधिकार कर लें। उनके विश्वासपात्र और स्नेहभाजन बन जायँ।"

विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का सबसे अच्छा ढंग तो विदेशी कपड़ों की आमद पर अवरोधात्मक कर (Prohibition tax) लगाना होता परन्तु देश में जब तक अप्राकृतिक शासन प्रणाली मौजूद रहेगी तब तक यह बात बिलकुल असंभव है। इस समय तो केवल दो उपाय ही हैं (१) व्यापारी विलायती वस्त्र न खरीदने की प्रतिज्ञा करें (२) लोगों से विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कराया जावे। ये दोनों बातें दिखती सहज सी हैं किन्तु ३३ करोड़ प्रजा को प्रतिज्ञाबद्ध करना सहज बात नहीं है। सहज भी था सही किन्तु भारत की चढ़ती दरिद्रता और शक्तिशाली नौकरशाही का दमन उन्हें ऐसा करने से रोक रही है। यह कार्य्य असाध्य नहीं है—कष्ट साध्य अवश्य है।

सबसे अच्छी बात तो यह है कि कपड़े के व्यापारियों से प्रार्थना की जावे कि वे विदेशी वस्त्र न खरीदें। यह काम उतना कठिन नहीं है जितना कि समझा जाता है। यद्यपि हमारे वस्त्र व्यापारी धन लोलुप और कुछ स्वार्थी हैं सही तथापि अपनी नर्मदिली, धार्मिक प्रवृत्ति और सहज ही में प्रभावान्वित होने के कारण बात को स्वीकार कर लेंगे। ऐसे लोगों को उनका भला बुरा समझाकर तथा उन पर नैतिक प्रभाव डाल कर उन्हें विदेशी कपड़ा न मँगाने के लिए प्रतिज्ञा का कराना कोई कठिन बात नहीं है। यदि अत्यंत स्वार्थी कुछ लोग विदेशी वस्त्र का व्यापार न भी छोड़ें तो उन्हें एक न एक दिन प्रबल लोक मत के कारण नीचा झुकना पड़ेगा। इन लोगों की समाज में ठीक वही दशा मानी जावेगी जैसे दाँतों के बीच जबान की। यों तो व्यापारी मात्र को ही जनसाधारण अच्छी दृष्टि से नहीं देखते परन्तु समाज में मारवाड़ी तो अत्यंत ही अप्रिय और

बदनाम हैं। लोगों की धारणा यह है कि विदेशी कपड़े के व्यापारी मारवाड़ी ही होते हैं और यह है भी सही। सचमुच विदेशी कपड़े के व्यापार का एक बड़ा भारी हिस्सा मारवाड़ी लोगों के हाथ में है। ऐसे अप्रिय और बदनाम मुट्ठी भर लोग प्रबल लोकमत के सामने अधिक नहीं ठहरेंगे। यदि इतने पर भी उनकी आँखें न खुलें तो धरना (पिकेटिंग) से काम लिया जावे। स्वार्थान्ध मनुष्य के लिए धरना वही काम करता है जो मदान्ध हाथी के लिए छोटा सा अंकुश। सरकार भी 'इण्डियन क्रिमीनल ला एमेण्डमेण्ट एक्ट' को छोड़ कर कोई नया कानून बना कर उसमें बाधा उपस्थित करे तो उसकी बाधा से रुकता कौन है? व्यापारी लोकापवाद के भय से और विशुद्ध अन्तःकरण की प्रेरणा से धरनेवालों पर मुकदमा चलाने का कभी दुस्साहस नहीं कर सकते। यदि चलाया भी तो कितनों पर चलावेंगे? उनके मुकद्दमे से डरता कौन है? आज कल ऐसी बातों के कारण सज़ा को लोग उत्तम समझते हैं। इसके कई प्रमाण समाचार पत्रों के पढ़नेवाले पाठक पढ़ते होंगे।

खादी के पुनरुज्जीवन का यही एक मात्र उत्तम उपाय है। और भी उपाय हैं जिनकी इस मंजिल को तय करने के बाद फौरन ही आवश्यकता पड़ेगी अन्यथा मंजिले मकसूद तक पहुँचना कठिन हो जावेगा। उनमें सबसे पहिले चर्खा आवश्यक है। वैसे तो चर्खे के पहिले अच्छे लम्बे रेशेदार कपास की आवश्यकता है किन्तु फिलहाल में इसकी इतनी आवश्यकता नहीं क्योंकि देश में कपास की खेती खूब होती है। हाँ, चर्खों की बड़ी भारी कमी है, जिसकी वृद्धि होना बहुत आवश्यक है। यह काम तभी हो सकता है कि प्रत्येक भारतीय

अपने अपने घर में एक एक चरखा अवश्य रखे और ४।५ घण्टे उससे कातकर सूत निकाले। यहाँ हम कुछ हिसाब दिखावेंगे। अगर फसल अच्छी हो तो एक एकड़ भूमि में २०० पाउण्ड कपास पैदा हो सकती हैं। परन्तु भारत में फी एकड़ १०० पाउण्ड कपास का औसत आता है। वर्ष के ३६५ दिनों में से ३०० दिन काम करने के मान लिए जावें तो रूई ओटने की चर्खी पर एक आदमी साल भर में ३००० पौंड रूई तय्यार कर सकता है, उसी प्रकार एक धुनिया भी ३००० पौंड रूई धुनकर उसकी पूनियाँ बना सकता है। अगर नित्य चार घंटे भी एक आदमी एक ही चरखे पर काम करे तो १० नम्बर का ५० पौंड सूत एक साल में बखूबी कात सकता है। और इस १० नम्बर के सूत से २७ इंच अरज़ का ७५० पौंड कपड़ा एक जुलाहा एक वर्ष में बुन सकता है।

अगर सूत महीन हो तो वज़न की तादाद अवश्य ही कम होगी परन्तु उधर उसकी लम्बाई बढ़ जावेगी। एक आदमी को साल भर में करीब दस पौंड कपड़े की आवश्यकता होती है। इस हिसाब से ३०० मनुष्यों की आबादी में अगर ३० एकड़ जमीन हो १ मनुष्य लोढ़नेवाला और एक धुननेवाला हो, ६० चरखे नित्य चार घंटे चलते रहें और चार जुलाहों के घर हों तो उस बस्ती से कपड़े के नाम पर एक पाई भी बाहर नहीं जा सकती। वही हिसाब आर्थिक दृष्टि से नीचे दिया जाता है—

३० एकड़ ज़मीन पर १०) रु० फ़ी एकड़ के हिसाब से लागत खर्च रु०	३००)
लगान फ़ी एकड़ २) के हिसाब से	६०)

३००० पौंड रूई की पूनियाँ बनवाई में दो आने फी पौंड की दर से	३७५)
३००० पौएड सूत की कताई छः आने फी पौएड के हिसाब से	११२५)
३००० पौएड सूत की बुनाई आठ आने प्रति पौएड के हिसाब से	१५००)
कुल जोड़	३३६०)

कपास की लुढ़ाई इस लिए नहीं लगाई कि उस कीमत के उसमें से बिनौले निकल आते हैं। इस तरह ३३६० रुपयों में ३०० आदमियों की बस्ती को ३००० पौंड कपड़ा मिल सकता है। अर्थात् कपड़े का भाव १=) रु० पौंड हुआ। इस हिसाब से भारत में यदि चर्खे चलते रहें और वस्त्र बुनने का काम होता रहे तो हमारे देश में बाहर के देशों से रूई का एक सूत भी न आवे। इस प्रकार एक दिन विदेशी वस्त्रों का व्यापार बन्द हो जावेगा और हमारी व्यापारी सरकार का भी खज़ाना खाली हो जावेगा।

अँग्रेज़ काल में फैशन रखने वालों का ख़र्च।

हम यह ऊपर कह आये हैं कि एक आदमी को एक साल में १० पौंड कपड़े की ज़रूरत है। और यह ऊपर का हिसाब भी इसी पर से तय्यार हुआ है। किन्तु खादी का वज़न अधिक होता है इस कारण मनुष्य को अनाप सनाप कपड़े सिला सिलाकर सन्दूकों में बन्द नहीं रखने चाहिए। १० पौंड वज़न औसत स्त्री पुरुष दोनों का है—स्त्रियों के लहँगे आदि वस्त्रों में अधिक कपड़ा लगता है। आज कल जिस प्रकार कपड़े पर कपड़े लोग पहिनते हैं यह भारतवर्ष के लिए हितकर नहीं

कहा जा सकता। यह भारतीय ढंग नहीं। पश्चिमीय लोग बहुत से वस्त्र धारण करते हैं क्योंकि उनका देश ठंडा है—यदि वे इतने और इस ढंग के टोप, कोट, पैंट, वगैरः नहीं पहिनें तो उन्हें बड़े बड़े कष्टों का सामना करना पड़े। यवन-काल में हमने तत्कालीन पोशाकों के मूल्य का एक कोष्ठक दिया है; अब अंगरेज़ काल के पहिनावे का कोष्ठक देखिये—

वस्तु	मूल्य
१ फेल्ट टोपी अच्छी बढ़िया	५)
१२ शीशियाँ तेल की फी शीशी फी महीने के हिसाब से	१२)
१ ऐनक (चश्मा)	८)
१ कंघा बाल काढ़ने का अच्छा	॥)
१ ब्रुश टोपी साफ करने का	॥)
१२ बट्टी साबुन वर्ष भर के लिए कम से कम १ प्रतिमास	२।)
१ टूथ ब्रश	।)
१ रास्कोप घड़ी (जेबी)	५)
१ चैन घड़ी के लिए	।॥)
२ पतलून	५)
१ गेलिस	१॥)
४ जोड़ी मोजे पैर के (वर्ष भर)	२)
१ जोड़ी मोजे बाँधने के लिए	।=)
२ जोड़ी बूट डासन्स कं० के	१५)
१२ डिब्बी टूथ पाउडर (वर्ष भर)	३)
३ बनियान	३)
४ कमीजें	६)
१ सेट बटन कमीज	।)
२ वास्कटें	४)
२ हाफ कोट	१४)
२ नेकटाई	१॥)
१ बो	।-)
१ क्लिप	।)
४ कालर	१॥)
१ शीशी बूट पालिश	॥=)
१ ब्रश बूट सफाई	।=)
१ फॉर्क बूट पहिननेका	≡)
६ रुमाल (वर्ष भर)	१॥)
१ वार्किंग स्टिक	।=)
१ जोड़ा बढ़िया धोती जो मौके बमौके पहिनी जावे	८)
कुल जोड़	१०६) रु०

आज कल एक पश्चिमी फेशन बनानेवाले को १०६ रु०

साल का खर्च केवल पहिनावे का ही है। ऐसे पहिनावे के साथ और भी खर्चे होते हैं जैसे धोबी, नाई, कुर्सी, टेबल, सिगरेट चाह के प्याले वगैरः। यदि यवनकाल के सस्ते जमाने में हमारे कपड़ों के लिए ६) रु० एक वर्ष में खर्च होता था तो आज १०६) में भी तंगी से गुजर होता है। अर्थात् पहिले से १२ गुणा वस्त्र खर्च बढ़ गया है!! यह ढंग देश के लिए अत्यन्त हानिकर है—अतएव मनुष्य को जहाँ तक बन सके वहाँ तक बिलकुल कम कपड़े पहिनने चाहिए।

बहुत कपड़े पहिननेवाले भारतीय व्यक्ति का शरीर अस्वस्थ हो जाता है। हमारे भारतीय बन्धु प्रायः प्रत्येक ऋतु में अपनी पोशाक बदलते रहते हैं। यह शरीर के लिए हितकर नहीं कहा जा सकता। सर्दी के वस्त्र पहिन कर जिस आदत को पैदा की थी वह आदत एक दम २।३ महीनों के बाद हो गर्मी में बदलनी पड़ती है। इसी प्रकार गर्मी के वस्त्र पहिनने का २।३ महीनों में जो अभ्यास किया था वह वर्षा ऋतु में बदलने के लिये विवश होना पड़ता है। इस पोशाकों की हेराफेरी का यह परिणाम होता है कि वह मनुष्य हमेशा फसली बीमारियों से बीमार हो जाता है। इसके अतिरिक्त जो तीनों मौसिमों में एक ही तरह का वस्त्र धारण करते हैं वे निरोगी रहते हैं। उनका शरीर सहनशील बन जाता है। अतएव भारतवासियों को अपने देश की आबो हवा का ध्यान रखकर ही पोशाक पहिननी चाहिए। शरीर पर बहुतेरे कपड़े लादने से किसी भी तरह का लाभ नहीं—सर्वथा हानि ही है।

विदेशी वस्त्रों का पहिनना धर्म्म विरुद्ध है।

खादी एक ऐसा अच्छा कपड़ा है कि जिसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। जिन्होंने इसे इस्तेमाल किया है वे इसके गुणों पर

मोहित हैं और अपने विदेशी वस्त्र प्रयोग पर सच्चे मन से पश्चात्ताप करते हैं। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए खादी में एक बड़ा भारी गुण है कि वह खुरदरी होने के कारण शरीर पर उत्पन्न होनेवाले पसीने और मैल को शीघ्र ही अपने में खींच लेती है। मजबूत होती है सस्ती होती है, खूबसूरत होती है और पवित्र होती है। विदेशी कपड़े में और मील के कपड़े में जो खली लगाई जाती है वह अशुद्ध होती है। लाहोर का पत्र "वन्देमातरम्" कहता है—

"खली में जो पदार्थ डाले जाते हैं, उनमें ऐसे अपवित्र पदार्थ भी हैं जो हिन्दू और मुसलमानों के लिए अस्पृश्य हैं।"

पूने के केसरी में इस विषय का ज़िक्र किया गया है। सुप्रसिद्ध प्रो० टी० के० गज्जर की रसायनशाला के श्री० के श्री० खरे महाशय ने पक्षपात शून्य होकर कहा है कि विदेशी मिलों की खली की बनावट में चर्बी का उपयोग बहुत बड़े प्रमाण पर किया जाता है और यह चर्बी विशेष कर बैल या सुअर की होती है।"

इस पक्षपात रहित सम्मति को पढ़ कर कौन सच्चा हिन्दू या मुसलमान होगा जो विदेशी वस्त्र से अपने शरीर को ढक कर फिर भी अपने को अपने धर्म में दृढ़ मानेगा। जो लोग विदेशी वस्त्र पहिन कर अपने को धार्मिक समझते हैं वे अज्ञान में हैं—यह धर्म का ढकोसला है। एक पुस्तक में देखा है कि "विदेशी वस्त्र पर कलप चर्बी से दी जाती है। जितना भी वलायती बढ़िया वस्त्र होता है उसमें प्रायः गाय और भेड़ की चर्बी दी जाती है।" यही हाल रंगीन वस्त्रों का है।

रंग अपवित्र होता है, रक्त आदि से बनाया जाता है, अतएव विदेशी वस्त्र सर्वथा त्याज्य है। यदि कोई मुफ़ में दे तो भी अग्राह्य है। केवल खादी ही सब प्रकार से हमारी रक्षक है। धन, धर्म और स्वतन्त्रता की जड़ है। अब खादी के विषय में कई प्रश्न हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि खादी किसे मानी जावे ! इसके उत्तर में हम महात्मा गान्धी के वचनों को ही लिखते हैं। वे आज्ञा देते हैं कि—

"खादी वही शुद्ध खादी है जो हाथ से ओटे हुए, धुने हुए और चर्खे से बने हुए सूत्र से बुनी गई हो।"

सच्चा स्वदेशी वस्त्र तो वही हो सकता है जिसे मशीनों ने न छुआ हो और भारत में ही तैयार हुआ हो। इस समय खादी कौन सा कपड़ा है यह जान लेना ज़रा कठिन हो रहा है। जब भारत में खादी की हलचल मची तो मैंचेस्टर, लैंकेशायर जापान वगैरह ने खादी बना बना कर भारत में भेजना आरम्भ कर दिया। उन पर चरखे की छाप होती है, म० गान्धी की तस्वीर होती है इत्यादि लोगों को भुलावे में डालने के कई उपाय किये जाते हैं। इसी प्रकार भारतीय मिलों ने भी खादी से बाज़ार भर दिया। जुलाहों ने मिल के सूत से बुनना आरम्भ कर दिया। कुछ लोगों ने ताना मील के सूत का और बाना चरखे के सूत का डाल कर खादी तैयार की। मतलब यह है कि बड़ी गड़बड़ी मच रही है—वास्तव में शुद्ध खादी किसे कही जावे यह जान लेना कठिन हो रहा है।

एक समय वह था कि लोग भारतीय मिलों के बने वस्त्र को विलायती बता कर खूब दाम पैदा कर रहे थे, अब एक ज़माना यह आ गया है कि विदेशी कपड़ों को भी कपड़े के व्यापारी स्वदेशी बता कर लोगों को ठगते हैं। लोगों को क्या

ठगते हैं—ऐसे धूर्त देश के साथ विश्वासघात करते हैं। आज बहुत सा कपड़ा खादी के नाम से लोगों को देदिया जाता है। यह वस्त्र के व्यापारियों की नीचता है। लोगों को महात्माजी के बताये शुद्ध खादी पहिचानने के उक्त कथन को ध्यान में रख कर ही खादी का प्रयोग करना चाहिए। सबसे सीधा और सुगम उपाय तो यह है कि अपने घर में ही चरखे द्वारा इच्छानुसार मोटा बारीक सूत कात कर जुलाहों द्वारा कपड़ा बनवा लेना चाहिए या खुद बुन लेना चाहिए। इससे बढ़ कर खादी की रक्षा का दूसरा कोई उत्तम उपाय नहीं है। अथवा कांग्रेस कमेटी को लोगों की आवश्यकतानुसार शुद्ध खादी देने का प्रबन्ध करना चाहिए। इस पर भी विश्वास किया जा सकता है। अन्य दूकानदारों के यहाँ से खादी तभी खरीदना चाहिए जब कि उसके शुद्ध होने के परखने का ढंग मालूम हो अन्यथा धोका हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

खादी का धन्धा बिलकुल घरेलू होना चाहिए। भोजन और वस्त्र के लिए देश को विदेशों का मुँह न ताकना पड़े, इतनी शक्ति तो वर्त्तमान में कम से कम उत्पन्न कर लेना ज़रूरी है। इससे देश में काम बढ़ जावेगा। जो शिल्पी और कारीगर बेकार बैठे हैं वे अपना गुजर चला सकेंगे। लोगों के पास जब काम हो जावेगा तो ठगी, चोरी, व्यभिचार आदि पाप कार्य कम हो जावेगें। बेचारी दीन विधवाएँ चरखा चला कर अपना पेट भरेंगी और पाप कर्म से बच कर देश का मुख उज्ज्वल करेंगी। विलायती बारीक वस्त्रों द्वारा उत्पन्न विलासिता देश से कूच कर जावेगी। तात्पर्य्य यह है कि खादी ही भारत के लिए सब तरह से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की देनेवाली है। जिन्हें ये चारों प्रिय हों वे खादी पहिनना आरम्भ करके देख लें।

जेल में जाने लगे। यह नया खर्च बढ़ता देख कर तथा दमन से उलटी उत्तेजना फैलती देख कर सरकार भी घबराई किन्तु फिर भी अपनी शान रखने के लिए अपने दुराग्रह पर पैर जमाये ही रही। इधर भारतीय भी सत्याग्रह के लिए कटिबद्ध हो तय्यार हो गये। उधर शस्त्रबल सम्पन्न अंग्रेज़ सरकार और इधर आत्मबलयुक्त निरस्त्र और शान्त भारतवासी।

जिधर धर्म होगा उधर ही जीत है क्योंकि हम लोग तो "यतो धर्मस्ततोजयः" के माननेवाले हैं। खादी युद्ध की अन्त में जीत होगी ऐसा हमारा विश्वास है। क्योंकि दिन प्रति दिन लाखों खादी प्रेमी इस युद्ध के योद्धा बनते जा रहे हैं। भारतीयों ने ही क्या पृथ्वी के समस्त लोगों ने हमारे इस युद्ध को उचित और धार्मिक कहा है। बहुत से लाखों विदेशीय भाई हमारे इस आन्दोलन से सहानुभूति रखते हैं और मंगल कामना करते हैं। महात्मा गान्धी के नाम अमेरिका आदि देशों से सहानुभूति प्रदर्शक कई तार आये हैं जिन्हें पाठक सम्भवतः समाचार पत्रों में पढ़ चुके होंगे।

खादी सर्वमान्य होती जा रही है। यहाँ तक कि डाकोरनाथ (गुजरात) के मन्दिर की मूर्तियाँ भी खादी से अलंकृत की जाती हैं और विदेशी वस्त्रधारी मनुष्य को उस मन्दिर में घुसने तक नहीं दिया जाता। पुरी के जगन्नाथ जी की मूर्तियों को भी खादी की पोशाकें पहिनाई जाती हैं ऐसा सुना गया है। लिखने का तात्पर्य्य यह है कि खादी का प्रचार खूब हो रहा है; लोग इसकी उपयोगिता को खूब अच्छी तरह समझने लगे हैं। तभी तो गत जून मास में (१९२२) मई की अपेक्षा कम माल हिन्दुस्तान में आया और

बाहर गया। मई में १६ करोड़ ६ लाख आया था तो जून में १६ करोड़ ४० लाख का माल आया। हिन्दुस्तान से विदेशों को १८ करोड़ २२ लाख का माल भेजा गया। मई महीने की अपेक्षा यह रकम ७ करोड़ ७४ लाख कम है। जो बाहर से आया हुआ माल फिर से विदेशों को भेजा गया उसका मूल्य ६१ लाख था और १ करोड़ ३१ लाख का विदेशी माल यहाँ से विदेशों को भेजा गया। पिछले वर्ष के इन्हीं महीनों के अङ्कों के अनुसार बाहर से १६ फी सदी माल कम आया और विदेशी माल २३ फी सदी कम भेजा गया तथा स्वदेशी माल १८ फी सदी अधिक भेजा गया। ये हम लोगों के लिए शुभ चिन्ह हैं। ये हमारी जीत के लक्षण हैं। हम लक्षणों से खादी के आगे विदेशी वस्त्र अधिक नहीं टिक सकते।

वर्त्तमान आन्दोलन की पोशाकों में से एक पोशाक खादी की सफ़ेद टोपी है। यह आजकल "गान्धी केप" (Gandhi-cap) के नाम से संसार में मशहूर है। कई लोग इसको अन्य नामों से भी पुकारते हैं जैसे "असहयोग केप" "स्वराज्य केप" इ०। यह टोपी यद्यपि खादी की किश्तीनुमा और बिलकुल सस्ती है तथापि हमारी अंग्रेज़ सरकार इसको बुरी समझती है कुछ अंश में यह बात ठीक भी है क्योंकि खादी का प्रचार भारत में आनेवाले विदेशी वस्त्र का बहिष्कार है। जिस व्यापार के बल पर सारा इंग्लैण्ड गुलछर्रे उड़ा रहा हो उस व्यापार का विरोध हमारी सरकार को कैसे सहन हो सकता है? तभी तो उसने "गान्धी केप" के लिए बड़े २ कड़े; प्रकट नहीं तो कान्फीडेन्शियल (Confidential) आर्डर्स निकाले हैं जिनका उपयोग समय पाते ही नौकरशाह करने में नहीं चूकते। आज देशी खादी की टोपी लगा कर सरकारी दफ़्तरों में नौकरी

करना मना किया जाता है। हम भारतीय गुलामी की जंजीर में बँधे हुए मुर्दे की तरह इस अन्याय को सहते हैं!! क्या कारण है कि खादी की सफेद टोपी लगाकर हम अंग्रेज़ी दफ़्तरों में नौकरी नहीं कर सकते। यदि हम भारतवासियों को भारतवर्ष में भारतीय रूई के वस्त्र से तय्यार की हुई टोपी पहिनना अपराध ही है तो हैट लगाकर ऐसे स्थानों में जाना भी अवश्य अपराध होना चाहिए। अपने देश से सबको प्यार होता है और अपने देश की वस्तु सभी को प्यारी लगती है। किन्तु हा! खेद, कि अंगरेज़ी शासन में भारतीयों के लिए स्वदेश-प्रेम भी एक अपराध है!!! इससे बढ़ कर देश की दुर्दशा का और कौन सा समय कहा जा सकता है?

हमारे भारत का ⅓ हिस्सा देशी रियासतों से घिरा हुआ है। इन रियासतों के सभी शासक हिन्दुस्थानी हैं। इस पर से हमें प्रसन्नता होनी चाहिए किन्तु प्रसन्नता की जगह उलटा दुःख होता है जब कि अंगरेज़ी शासन से अधिक दमन कभी कभी देशी शासन में होता दिखाई देता है। ये देशी राज्य वैसे तो स्वतन्त्र मालूम पड़ते हैं किन्तु इनकी भीतरी दशा देखी जावे तो ये बड़े बन्धन में हैं। वैसे तो देशी राज्यों में स्वराज्यान्दोलन कम है, किन्तु यह भी असम्भव है कि खादी जैसे सर्वव्यापी आन्दोलन की लहर रियासतों में नहीं पहुँचने पावे। यह लहर रियासतों में भी बड़े ज़ोरशोर के साथ उठी है, जिसे देशी रियासतों के कई महाप्रभु दबाने की चेष्टा कर रहे हैं। उन्होंने भी बृटिश राज्य की देखा देखी गान्धी केप को बुरा समझ लिया है और कभी कभी तो खादी के प्रचारकों को अपने राज्य से देश निकाले तक का दण्ड विधान किया है। बहुत से लोग इस अपराध से राज्यों से बाहिर निकाले जा

इतिहासों में कई प्रमाण ऐसे मिलते हैं जिनमें महापुरुषों का अन्याय द्वारा दण्डित होना सिद्ध होता है। रामदूत हनूमान का राक्षस पुरी लंका में सीता देवी की खोज के लिए जाना और उसके बाग को बरबाद करने तथा योद्धाओं को मारने के अपराध में उनका गिरफ़ार होना तथा लांगूल में आग लगाना इ० सब कुछ यही बताता है कि अन्यायियों द्वारा धर्मात्मा पुरुषों को कष्ट सहना ही पड़ता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पिता और माता अन्यायी कंसद्वारा वर्षों तक जेल में रहे और वहीं उस महात्मा कृष्ण का जन्म हुआ। यदि पाप के कारण या संसार के अपकार के कारण जेलखाना हो तो वह नर्क है किन्तु जो परोपकार के लिए और धर्म के लिए जेलखाने जाते हैं वे निःसन्देह स्वर्गवास करते हैं। स्वदेश-प्रेम प्रत्येक प्राणी का स्वाभाविक धर्म है यदि इसकी रक्षा के लिए शरीर को किसी प्रकार का दुःख हो तो वह दुःख नहीं किन्तु सच्चा सुख है। यह हम जहाँ तहाँ बता आये हैं कि खादी ही स्वदेश की इज़्ज़त है।

हमारे इस खादी युद्ध के प्रधान सेनापति महात्मा गान्धी ने अदालत से विदा होते समय भारतवासियों को यह संदेशा दिया था—

"मुझे अब सन्देशा देने की आवश्यकता नहीं। मेरा सन्देशा तो लोग जानते ही हैं। लोगों से कहिये कि प्रत्येक हिन्दुस्थानी शान्ति रखे। हर प्रयत्न से शान्ति की रक्षा करे। केवल शुद्ध खादी पहिनें और चर्खा कातें। लोग यदि मुझे छुड़ाना चाहें तो शान्ति के द्वारा ही छुड़ावें; यदि लोग शान्ति छोड़ देंगे तो याद रखिये मैं जेल में ही

रहना पसन्द करूंगा। यह महात्मा जी का सन्देशा जेल जाने के समय का है। श्रीगान्धी जी की इस आज्ञा का पालन करना प्रत्येक भारतवासी का प्रथम कर्तव्य है। वह वीर सेनापति जेल के अन्दर से भी हमें यही आज्ञा दे रहा है। शुद्ध खादी पहिनने और चर्खे के कातने से ही श्री गान्धीजी क्या बल्कि देश वन्धन मुक्त हो सकता है। जो मनुष्य इस समय विदेशी कपड़े का व्यापार करते हैं या स्वयं पहिनते हैं वे धर्मच्युत, पतित मनुष्यत्वहीन, और देशद्रोही हैं। जो देशी मिल के कते बुने कपड़े पहिनते हैं वे देश को स्वतंत्र देखना नहीं चाहते ऐसा मान लेना चाहिए। जो आधा मिल का और आधा चर्खे के सूत का बना वस्त्र धारण करते हैं वे महात्मा गान्धी को छः साल से पहिले छुड़ाना नहीं चाहते। जो लोग शुद्ध चर्खे का कता बुना खद्दर पहिनते हैं वे महात्मा जी को मियाद से पहिले छुड़ानेवाले हैं और जो खुद अपने हाथ से चर्खा कातकर सूत से स्वयम् बुन कर खादी पहिनते हैं वे भारत को परतंत्रता से मुक्त करना चाहते हैं। वे सच्चे महात्मा, धार्मिक, तपस्वी, और देश-भक्त हैं।

बहुत से भाई जो विदेशी वस्त्र पहिने होते हैं उनसे यदि खादी पहिनने की प्रार्थना की जाती है तो वे कह देते हैं कि यह तो पुराने कपड़े हैं अब जो बनावेंगे वे खादी के ही बनावेंगे इ०। यह केवल एक बहाना कहा जा सकता है। वास्तव में देश की इतनी ग़रीब हालत है कि वह विदेशी वस्त्र जो पुराने हैं उन्हें फेंक या जला नहीं सकता; किन्तु यह समय इतना महत्वपूर्ण है कि विदेशी वस्त्र का बायकाट और खादी का प्रेम परमावश्यक है। लोगों ने अपने शरीरों को देश की वेदी पर बलि कर दिये, अफ़सोस कि हम हमारे प्यारे वतन के लिए शरीर को

ढ़कने वाले जीर्ण शीर्ण वस्त्रों को भी नहीं त्याग सकते। इससे चढ़कर मुर्दादिली का और क्या सबूत हो सकता है।

खादी के प्रचार की देश में बड़ी बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं। हमारी बहिनों ने कई वर्ष पुराने चर्खों को जो बिखरे हुए दुर्दशा में पड़े थे और जिन पर इंचों धूल जमी हुई थी झाड़ बुहार कर जोड़ जोड़ कर कातने आरम्भ कर दिये हैं। जुलाहों ने जो हाथ पर हाथ रखे बैठे थे हाथ पैर हिलाना आरम्भ कर दिया। मतलब यह है कि भारत में घर घर चर्खों के चलने का सन्नाटा सुनाई पड़ने लगा। उत्साही लोगों ने देशी करघों पर उनसे वस्त्र बुनना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार देश में खादी का नया युग आरम्भ हो गया। कांग्रेस ने भी इसके प्रचार की विराट् आयोजना की है। हम ता० १२, १३, १४ मई १६२२ को कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक जो हकीम अजमलखां के सभापतित्व में हुई थी उसमें खादी प्रचार विषयक प्रस्ताव को यहाँ ज्यों का त्यों लिखते हैं जिससे पाठकों को बहुत कुछ मालूम हो जावेगा। यह प्रस्ताव पास किया गया थाः—

वर्किंग कमेटी प्रस्ताव करती है कि देश के सामने उपस्थित किये गये विधायक कार्यक्रम के अनुसार, प्रत्येक प्रान्त को हाथ से कते और हाथ से बुने हुए खद्दर की बनावट और खपत को तरक्की देने के लिए विशेष रूप से संगठित प्रयत्न करना चाहिए। प्रान्तों को क़र्ज़ देकर तथा धन्धे के सम्बन्ध में सलाह देने तथा एक प्रान्त के प्राप्त अनुभव को दूसरे प्रान्त को पहुँचाने और उपयोगी जानकारी प्राप्त करके उसका प्रचार करने के लिए वर्किंग कमेटी ठहराव करती है कि सेठ जमनालाल बजाज एक विशेष विभाग का संगठन करें जिसके लिए कमेटी १७ लाख रुपये मंजूर करती है।

इस विभाग में तीन हिस्से रहेंगे—हुनर की शिक्षा, खद्दर का बनाना और बिक्री। खादी बनाने के हुनर की शिक्षा साबरमती आश्रम में श्री मगनलाल गान्धी के सञ्चालकत्व में होगी इस संस्था में हर एक प्रांत से २ या ३ विद्यार्थी बुलाये जायँगे। उन्हें खादी बनाने के सम्बन्ध में कुल बातों की शिक्षा ६ महीनों में दी जायगी। इस संस्था से शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी अपने अपने प्रांत में खादी के केंद्र क़ायम करने या ऐसी शिक्षण-संस्था का संघटन करने के काम में लगाये जायँगे। खादी बनानेवाला विभाग प्रांत के भीतरी कामों को परस्पर सहायक बनायगा और सूत या कपड़े को एक ही ढंग का बनायगा! यह विभाग स्थानीय संगठनों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। श्री० लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमदास इस विभाग का सञ्चालन करेंगे और घूमने वाले निरीक्षक उनके सहायक रहेंगे। बिक्री विभाग उन चुनी हुई जगहों में खादी के भण्डार खोलेगा, जहाँ प्रांतीय कांग्रेस कमेटियाँ काफ़ी तौर से खादी बेचने का प्रबन्ध कर सकती हों। श्री० विट्ठलदास जैराजानी इस विभाग के संचालक रहेंगे। सेठ जमनालाल बजाज इन विभागों को परस्पर सहूलियत के साथ चलाने और प्रचार कार्य के लिए जिम्मेदार रहेंगे। धन सम्बन्धी व्यवस्था पूरी उन्हीं के हाथ में रहेगी। प्रान्तों को क़र्ज़ लेने के लिए सब प्रार्थना-पत्र सेठ जमनालालजी के पास भेजने चाहिए जिन्हें वे अपनी सिफ़ारिश के साथ फ़ैसले के लिए वर्किंग कमेटी के पास भेजेंगे। ज़रूरत के वक्त सेठ जमनालाल ९ हज़ार रुपये तक क़र्ज़ दे सकेंगे। क़र्ज़ की दरख़ास्तों का निर्णय करते समय वर्किंग कमेटी प्रांतों की आवश्यकताओं और प्रांतों द्वारा खादी के काम में लगाये गये धन का ध्यान रखेगी जिससे स्थानीय प्रयत्नों को उत्तेजन मिले और योग्य मामले में सहा-

यता दी जा सके। हुनर शिक्षा के लिए बजट में २५ हजार, बिक्री विभाग के लिए २ लाख और खद्दर बनाने वाले विभाग के दफ्तर के लिए २० हज़ार, प्रचार और जानकारी के विभाग के लिए १ लाख और प्रांतों को कर्ज़ देने के लिए १३ लाख ५५ हज़ार रुपये रखे गये हैं।

यद्यपि ये १७ लाख रुपये भारत में खादी प्रचार के कार्य के लिए कम हैं तथापि वर्त्तमान समय में यह रकम ठीक ही है न अधिक है न कम है। उक्त प्रस्ताव के अनुसार खादी विभाग कांग्रेस ने पृथक कायम कर दिया और उसका कार्य भी सत्याग्रह आश्रम साबरमती अहमदाबाद में श्रीमान् सेठ जमनालालजी ने आरम्भ कर दिया है। सारांश यह है कि देश अब खादी की उपयोगिता को समझ गया है और वह उसके प्रचार में इस समय तन, मन, धन, से संलग्न है। खादी शीघ्र ही हम लोगों के उद्योग तथा उस परमपिता परमात्मा की कृपा से उन्नतावस्था प्राप्त कर हमें स्वराज्य प्राप्त करावेगी।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः। सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।"

खादी सुभाषित।

"......यदि मुझे छुड़ाना चाहें तो केवल शुद्ध खादी पहिनें और चरखा कातें।" म० श्रीगान्धीजी

× × ×

जिन्हें मेरे दुःख के साथ कुछ भी सहानुभूति हो, तथा गान्धीजी के प्रति आदर भाव हो वे उनके आज़ादी तथा शान्ति के उद्देश को निवाहें। और बहिनों से मेरी प्रार्थना है कि वे विदेशी वस्त्रों का त्याग करें; खादी पहिनें और चरखा चलावें।"

श्री० कस्तूरा बाई गान्धी

"भारतवासी खादी के सिवा दूसरा कोई कपड़ा न पहिनें और चर्खे को घर घर में दाखिल कर दें।"

—मौलाना अब्दुलबारी।

"भाई जमनालाल! केवल आर्थिक दृष्टि से मैं कह सकता हूँ कि परदेसी सूत और कपड़ों का व्यापार करनेवाले यदि व्यापार को नहीं छोड़ेंगे और जनता विदेशी कपड़े के मोह को न छोड़ेगी तो मुल्क की महाबीमारी—भूख हरगिज नहीं हटेगी। मुझे आशा है कि सब व्यापारी खादी और चर्खा के प्रचार में पूरा हिस्सा देंगे।" —मोहनदास करमचंद गान्धी।

× × ×

"हमें आज ही विदेशी वस्त्रों का मोह छोड़ देना चाहिए। हमारी परतंत्रता का कारण यही विदेशी वस्त्रों का मोह है। इसी मोह के कारण आज हम इतने दीनहीन हो गये हैं। इसी मोह के कारण आज हमारे करोड़ों भाई भूखों मर रहे हैं। यही मोह अनेक दुर्भिक्षों को न्यौता दे रहा है और अनेक रोगों का पिता है जिसके कारण करोड़ों भारतीय प्रतिवर्ष मृत्यु के मुँह में जा

पड़ते हैं। यही मोह हमारी तमाम विपदाओं का जनक है। इसलिए हमें शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त करके यदि महात्माजी को छुड़ाना है तो आज ही इस मोह को छोड़ दीजिये। शुद्ध पवित्र खादी ही धारण कीजिये, यही सब आपदाओं को हरण करेगी। यही आपके करोड़ों भाइयों को भीषण दुर्भिक्षों से बचावेगी और आपको स्वराज्य प्राप्त करा देगी। यही महात्माजी को छुड़ाने का एक मात्र साधन है।"

—"नवजीवन" ता० ६ एप्रिल १६२२।

× × ×

बहनें इस बात का विचार क्यों नहीं करतीं कि विदेशी कपड़ा पहिनने में कितना पाप है? महीन कपड़े विना यदि काम नहीं चलता हो तो उन्हें महीन सूत कातना चाहिए। धर्म की रक्षा का अंश तो स्त्रियों में ही अधिक होता है। भावी सन्तान को हमें यह कहने का मौका तो हरगिज नहीं देना चाहिए कि स्त्रियों के बनाव शृंगार के बदौलत भारत को स्वराज्य मिलते मिलते रुक गया।"

—श्री० कस्तूरी बाई गान्धी।—

× × ×

"भारत आज पंजाब और खिलाफत के घावों से बेचैन है—दुखी है। ये जख्में केवल खादी से ही अच्छी हो सकती हैं।"

—जमनालाल बजाज।"

× × ×

"खुद मेरे प्रान्त में अस्पृश्यता के कलंक को नष्ट करने के लिए मैं तो सदा से एक धर्म युद्ध छेड़ने के लिए ही कहता आया हूँ। और आजकल तो मैं अपनी रसायनशाला में बैठ कर आविष्कार करने का महत्वपूर्ण कार्य छोड़कर देहातों में ही

घूमता फिरता हूँ और चर्खा तथा खादी का प्रचार कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि मेरे देश भाई भी उन शब्दों को (खादी पहनो) जो कि हमारे हृदय-सम्राट् महात्मा गान्धीजी ने जेल जाते समय कहे थे,—अच्छी तरह याद रखेंगे।"—(डाक्टर) प्रफुल्लचन्द्रराय।

× × ×

"युद्ध का, अपनी पूरी ताकत से युद्ध करने का, यही समय है। देखिये यह विजय—श्री अपने हाथों में जयमाल लिए तुम्हें पहिनाने को खड़ी है। बस खादी पहिनिये। वही इस युद्ध में प्रहारों से हमारी रक्षा करेगी। उसे पहिन कर इस अहिंसा रणस्थली पर निर्भयतापूर्वक खड़े हो जाइये। बन्दूक की गोलियाँ आपको छू तक नहीं सकेंगी। पैने तीरों की भी उसमें घुसने की ताकत नहीं है। आजकल के जड़वादी इंगलैण्ड पर दूसरी किसी भी बात से इतना असर नहीं पड़ सकता जितना कि उसके व्यापार का पतन उसकी अक्ल को ठिकाने ला सकता है। और आपकी स्वदेशी-प्रतिज्ञा से बढ़कर उसका भारतीय व्यापार नष्ट करने का दूसरा कोई भी साधन नहीं है।"

रामभजदत्त चौधरी

× × ×

हमारे करोड़ों अर्द्ध-नग्न और क्षुधापीड़ित भाइयों के लिए चर्खा एक अपूर्व और अमोघ जीवन दाता हो गया है। उसे हमारे घरों से कौन नष्ट करना चाहेगा? उसकी रक्षा करना तो हमारा धर्म्म है। मैं खुद व्यापारी हूँ और अपने व्यापारी—भाइयों से साग्रह अनुरोध करता हूँ कि आप विदेशी वस्त्रों का व्यापार छोड़ दें। आप अभी तक हरेक धार्मिक आन्दोलन में खुले हाथों सहायता देते आये हैं। मैं आशा करता हूँ कि इस महान् धार्मिक आन्दोलन में भी आप उसी प्रकार तन, मन, धन, से देश को सहायता देंगे।" जमनालाल बजाज।

"जैसे पूजा के लिए गंगास्नान और नमाज़ के लिए वजू आवश्यक है वैसे ही स्वराज्य के लिए खादी आवश्यक है। मैं विदेशी कपड़े का पिकेटिंग करूँगा यह मेरा निश्चय संकल्प है।"

पं० मोतीलालजी नेहरू

× × ×

नितान्त गरीबी में पिसे जानेवाले हमारे करोड़ों देशवन्धुओं के कष्टों को तत्काल दूर करने और साथ ही राष्ट्रीय सम्मान ऊँचा बनाये रखने और राष्ट्रीयहितों की रक्षा करने के लिए विदेशी कपड़े के पूर्ण वहिष्कार के अलावा हम किसी भी दूसरे साधन का उपयोग नहीं कर सकते जो कि अधिक कृत कार्य हो सके। इसलिए मैं सब लोगों से गरीबों और धनवानों से स्त्रियों और पुरुषों से प्रार्थना करता हूँ कि वे विदेशी वस्त्रों का खरीदना या बेचना वन्द कर दें। और हाथ के सूत से हाथ की बुनी हुई खादी के बनाने तथा उसके उपयोग के लिए अपनी सारी शक्तियाँ लगा दें।"

पं० मदनमोहनजी मालवीय

× × ×

ख़ास तौर से मुसलमानों से दरख़ास्त करता हूँ कि रमजान का पाक महीना नजदीक है; ईद के लिए आप नये कपड़े सिलावेंगे ही। आप रमजान में और ईद के दिन राष्ट्रीय कपड़ा मान कर खादी को पहिनिये। हाथ के सूत से हाथ की बुनी खादी में सब ग़रीब अमीर मस्ज़िद, जुम्मा मस्ज़िद और ईदगाह में एक साथ खादी पहिन कर नमाज पढ़ेंगे तो वह इस्लामी समानता का बड़ा भारी प्रदर्शन होगा।"

सेठ छोटानी।

* समाप्त *